खण्ड 4

दकार्गलादि विचार

चतुर्थ खण्ड का परिचय

इस पाठ्यक्रम के दकार्गलादि विचार नामक चतुर्थ खण्ड में आपका स्वागत है। बृहत्संहिता के दकार्गल अध्याय में ऐसे अनेक विषयों का विवेचन प्राप्त होता है। जिनकी जानकारी भारतीय विद्या के प्रत्येक जिज्ञासु के लिए बहुत आवश्यक होती है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, पाताल आदि में होने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों की जानकारी हमें इस ग्रन्थ से मिल जाती है। प्रस्तुत खण्ड में आपके अध्ययन के लिए दकार्गल का परिचय पहली इकाई में ही प्रस्तुत किया गया है। इसमें आप विभिन्न विषयों की जानकारी प्राप्त करेंगें। ज्योतिष शास्त्र मौसम विज्ञान की तरह वर्षा का विवेचन और विचार प्रस्तुत करता है। इसके लिए दूसरी इकाई में वृष्टि-विवेचन के रूप में आप विषयवस्तु का अध्ययन करेंगें जिससे आपको वर्षा के विषय में किये गये अध्ययन का बोध प्राप्त होगा। इस खण्ड की तीसरी इकाई वृक्षायुर्वेद का वर्णन करती है। इसके वर्णन में वृक्ष सम्बन्धी सभी तथ्य समाहित हैं। चौथी इकाई में प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन किया गया है। ज्योतिषशास्त्र इस प्रकार की वैज्ञानिक शैली में ज्ञान का विचार विमर्श करता है। पाचवीं इकाई कूर्मचक्र तथा छठी इकाई ग्रहभक्ति के वर्णन की है। इस प्रकार चौथे खण्ड की छः इकाइयों में आप उक्त विषयों का अध्ययन करने के पश्चात् भली-भाँति व्याख्या करने में सक्षम हो सकेंगें।

ईकाई 1 दकार्गल

इकाई की संरचना

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 दकार्गल का परिचय एवं स्वरूप
1.3 जलप्राप्ति के लक्षण ज्ञानार्थ क्षेत्र विभाग
1.4 लक्षण के अनुसार जलप्राप्ति के स्थान
1.5 जलज्ञान के अन्य कारक तत्त्व
1.6 जलशुद्धि के प्रकार
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.10 बोधप्रश्न
1.11 पाठ्य ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से आप दकार्गल के परिचय व स्वरूप को बता सकेंगे।
- जलोपलब्धि के लक्षणों को भलीभांति समझ सकेंगे।
- दकार्गल के क्षेत्र-विभागों को बता सकेंगे।
- भूमिस्थ जल के स्वाद की विभिन्नता को बता सकेंगे।
- भूमिस्थ जल की विभिन्न शिराओं को बता सकेंगे।
- वृक्षों की स्थिति के आधार पर जलस्रोत का लक्षण एवं स्थान बता सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस सृष्टि के आरम्भ काल में सभी कुछ जलमग्न था अर्थात् सृष्ट्यारम्भ का बीज जलतत्त्व में ही सन्निहित था, यही वेद भी कहते हैं। इसीलिए वेदों में जल के विषय में अनेक मन्त्र हैं। जल जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में एक आवश्यक तत्त्व है। समस्त प्राणीजगत तथा वनस्तपतिजगत विभिन्न रूपों में पर्यावरण से जल ग्रहण करते हैं। विज्ञान तथा व्यवहार, लोक तथा शास्त्र सभी यह प्रमाणित करते हैं कि जल सुख-शान्तिदायक, ऊर्जावाहक, पुष्टिकारक, रोगनाशक, व सक्रियता का कारक है। जीवन में जल के महत्त्व को देखते हुए ही हमारे आचार्यों ने इसे 'अमृत' कहा है। 'अमरकोशकार' ने जल के पर्यायवाची के रूप में 'अमृत' व 'जीवन' का उल्लेख किया है- "पयः किलालममृतं .... जीवनं जलम्।"

प्रागैतिहासिक काल से ही यदि देखें तो मानव सभ्यता व नगर जनजीवन का विकास नदियों व अन्य जलस्रोतों के किनारे ही हुआ है। इसीलिए जल की महती व दैनन्दिन आवश्यकता को देखते हुए मानव ने वापी, कूप, तड़ाग, आदि का निर्माण करना प्रारम्भ किया। पहले जहाँ जल प्राप्ति का साधन नदियाँ या अन्य जलस्रोत ही थे वहीं विकासशील मानवजाति ने भूगर्भ के जल को प्राप्त करने का मार्ग सीख लिया, जिससे मानव सभ्यता का विकास अन्य स्थानों पर भी सम्भव हो सका। भू-जल की प्राप्ति मानव सभ्यता के विकास हेतु एक वरदान सिद्ध हुई। वर्तमान समय में भूजल का दोहन् बोरिंग, नलकूप, हैण्डपम्प, आदि यान्त्रिक विधियों से किया जाने लगा है। भू-जल की प्राप्ति के ये समस्त साधन श्रमसाध्य हैं व इनमें प्रचुर धनव्यय भी होता है। अतः उपयुक्त जलप्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा न हो तथा किस स्थान पर जल की प्राप्ति सहजता से हो जाएगी इसका विचार हमारे ऋषि-मुनियों व आचार्यों ने करना प्रारम्भ किया तथा इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने 'संहिता स्कन्ध' के अन्तर्गत 'दकार्गल' का विधान किया। दकार्गल का अभिप्राय यहाँ जलप्राप्ति व उसके उपयों से है। दकार्गल अध्याय के अध्ययन से हम भूमिलक्षण व वृक्षादिकों के द्वारा ही उत्तम जलस्रोत को प्राप्त कर सकते हैं व श्रम तथा धन दोनों बचा सकते हैं।

1.2 दकार्गल का परिचय एवं स्वरूप

दकार्गल एक पारिभाषिक शब्द है, इसको परिभाषित करते हुए आचार्य वराहमिहिर लिखते हैं- "दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।" अर्थात् जिसके द्वारा जल की प्राप्ति हो वही दकार्गल है। शब्दान्तर से दकार्गल का अर्थ भूजल की प्राप्ति के बन्धन को दूर करना भी है। दकार्गल के महत्त्व को बतलाते हुए आचार्य वराह मिहिर कहते हैं, "धर्म व यश को देने वाला दकार्गल को बताता हूँ जिससे भूमि में स्थित जल का ज्ञान होता है तथा उसके प्राप्ति के उपायों को करते हुए भूमि में स्थित जल को प्राप्त किया जा सके जो मानव जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हो। जिस प्रकार मानव जीवन में नाड़ियाँ हाती हैं जिनसे रक्तप्रवाह होता है उसी प्रकार भूमि में भी ऊँची-नीची अनेक जल शिराएं होती हैं जिनके द्वारा जलप्रवाह होता रहता है।

आकाश से वर्षा के रूप में गिरा हुआ जल ही भूमि के गर्भ में स्थित होता है परन्तु स्थान भेद से जल का स्वाद भी भिन्न-भिन्न होता है। इसको बतलाते हुए आचार्य वराह मिहिर ने लिखा है कि "वर्षा का जल सर्वत्र एक ही स्वाद वर्ण का होता है परन्तु भूमि के सन्सर्ग से उसका वर्ण व स्वाद अलग-अलग हो जाता है, अतः जल की परीक्षा भूमि के समान ही करनी चाहिए अर्थात् जिस प्रकार की भूमि होगी उसी प्रकार का जल उस स्थान पर प्राप्त होगा।" भूमि के सन्सर्ग से जल के स्वाद का विवेचन करते हुए वराहमिहिर ने लिखा है, "जो भूमि सशर्करा व ताम्रवर्ण की हो वहाँ जल का स्वाद कसैला होता है। कपिल वर्ण की भूमि हो तो उस स्थान का जल क्षारीय होता है। पाण्डु वर्णी भूमि का जल नमकीन होता है व नीलवर्ण की भूमि का जल मीठा होता है।

वस्तुतः दकार्गल का वर्णन ज्योतिष शांकर के संहिता स्कन्ध में अत्यन्त विस्तृत रूप से करते हुए आचार्यों ने वृक्ष, गुल्म, विवर (बिल), पिपीलिका (चींटी), मण्डूक (मेंढ़क), तृण (घास), शिला (पत्थर) आदि से युक्त इस प्रकार की भूमि पर लक्षणों के आधार पर जलप्राप्ति की संभावनाओं पर विचार किया है। भूगर्भस्थ जल की शिराओं (नाड़ियों) का भी विस्तृत वर्णन करते हुए दकार्गल के अध्ययन से जल भण्डार की मात्रा का ज्ञान भी आचार्यों ने दिया है। जलप्राप्ति हेतु खनन के लिए प्राचीन काल में गहराई के माप हेतु प्रचलित हस्त (हाथ), पुरुष आदि मापकों का प्रयोग किया गया है। प्रचीन मापकों को आधुनिक काल में प्रचलित फिट,

मीटर, आदि मापकों में परिवर्तन कर लेना चाहिए। प्राचीन काल में पृथ्वी अधिक मात्रा में वन से आच्छादित थी जिससे वर्षा भी प्रचुर मात्रा में होती थी व भूगर्भ के जल का स्तर उच्च स्तर पर था, साथ ही जल प्राप्ति की यान्त्रिक विधियाँ न होने से जल का दोहन सीमित मात्रा में होता था व कूप, तड़ाग आदि जल प्राप्ति के साधन होने के साथ ही भूगर्भ के जल स्तर को बनाए रखने में सहायक होते थे। अतः वर्तमान समय में दकार्गल के स्वरूप को समझने में इन कारकों का भी ध्यान रखना आवश्यक है। भारतीय ज्ञान परम्परा में जल जो कि पञ्चमहाभूतों में से एक है उसको देवस्वरूप माना गया है, इसलिए जलप्राप्ति के लिए दकार्गल के अध्ययन के साथ ही वरुणदेव जो जल के अधिष्ठाता देवता हैं उनके पूजन व मुहूर्त का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

1.3 जलप्राप्ति के लक्षण ज्ञानार्थ क्षेत्र विभाग

भूमि में स्थित जल के ज्ञान हेतु भूमि का ज्ञान सर्वप्रथम आवश्यक है, क्योंकि पृथ्वी सर्वत्र एक समान नहीं है। कहीं समतल मैदान हैं तो कहीं पठार, कहीं दलदली भूमि है तो कहीं रेगिस्तान। अतः भारतीय ऋषियों को यह ज्ञात था कि एक ही प्रकार का लक्षण जलप्राप्ति के लिए सर्वत्र उपयुक्त नहीं हो सकता। अतएव पूर्वाचार्यों ने भूमि को मुख्यतः चार क्षेत्रों में विभक्त किया है। वह चारों क्षेत्र विभाग ज्योतिष ग्रन्थों में निम्न संज्ञाओं से जाने जाते हैं-

1. जाबलदेश
2. अनूपदेश
3. मरुदेश
4. शिलादेश

1. जाबलदेश

जाबलदेश या क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए आचार्य वराह मिहिर ने- "स्वल्पोदको देशः जाबलः" अन्यत्र "अम्बुरहितः देशः" अथवा "जलवर्जितः देशः" का प्रयोग किया है। अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिस क्षेत्र में जल न्यून मात्रा में हो वह क्षेत्र जाबल क्षेत्र कहलाता है। जाबल क्षेत्र में जल का ज्ञान करने के लिए आचार्यों ने जो लक्षण बताए हैं उनमें जिन वृक्षों के वर्णन है वह सभी प्रायः बड़े वृक्ष हैं। जैसे- जाबल क्षेत्र में जम्बूवृक्ष, उदुम्बर, अर्जुन, पलाश, बिल्व आदि वृक्षों के द्वारा लक्षण ज्ञान बताया गया है। इस आधार पर हम समझ सकते हैं कि जिन क्षेत्रों में बड़े तने वाले वृक्ष होते हैं वह जाबल क्षेत्र होता है तथा उस क्षेत्र में भू-जल की मात्रा कम होती है।

2. अनूपदेश

अनूप क्षेत्र के विषय में वृहत्संहिता की टीका करते हुए आचार्य भट्टोत्पल ने लिखा है- "बहूदको देशोऽनूपः" तथा "प्रभूतं जलं यस्मिन् देशे स अनूपदेशः।" अतः इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि जिस क्षेत्र में भू-जल पर्याप्त मात्रा में हो उस क्षेत्र को अनूपक्षेत्र या अनूपदेश के नाम से जाना जाता है।

जब हम अनूपदेश के लक्षणों को देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि जिस क्षेत्र में स्निग्ध (चिकने) वृक्ष, लता, गुल्म, पुष्प के वृक्ष, कुश-काश, व तृण (घास) से युक्त होता है वह क्षेत्र प्रायः अनूपदेश होता है। अनूपदेश में जल कम गहराई पर तथा प्रायः सर्वत्र प्राप्त हो जाता है।

3. मरुदेश

मरुदेश अपने नाम से स्वतः विख्यात है, जिस क्षेत्र में जल की उपलब्धता अत्यन्त न्यून होती है बालू से युक्त वह भूखण्ड मरुदेश कहलाता है। मरुदेश के सन्दर्भ में वराह मिहिर ने लिखा है-

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि।
ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति।।

अर्थात् मरुभूमि में जिस तरह शिरा होती है उसको बताता हूँ। जैसे ऊँट की गर्दन होती है उसी प्रकार मरुभूमि में नीची शिराएं होती हैं। मरुदेश में प्रायः कांटेदार वृक्ष होते हैं अतः इस क्षेत्र में जलोपलब्धि के लिए प्रायः इसी प्रकार के वृक्षों से लक्षणज्ञान किया गया है। इसके अतिरिक्त बृहत्संहिताकार लिखते हैं-

मरुदेशे याच्छिह्नं न जाबले तैर्जलं विनिर्देश्यम्।
जम्बूवेतसपूर्वैर्ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः।।

अर्थात् जिन चिह्नों से मरुस्थल में जल ज्ञान कहा गया है उन चिह्नों से जाबल (स्वल्प जल वाले) देश में जल का ज्ञान नहीं करना चाहिए। पहले जामुन, बेंत आदि के द्वारा जल ज्ञान के समय जो पुरुष प्रमाण (गहराई के मापन हेतु) बतलाया गया है उसको द्विगुणित करके मरुदेश में ग्रहण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी "तस्मिन् शिरा प्रदिष्टानर्षष्ट्या पञ्चवर्जिताया" अर्थात् पचपन पुरुष नीचे जल ज्ञान की चर्चा मरुदेश के सन्दर्भ में प्राप्त होती है, अतः इसका तात्पर्य है कि मरुदेश में जल अत्यन्त नीचे स्थित होता है तथा उसकी मात्रा भी स्वल्प होती है।

4. शिलादेश

शिलादेश का तात्पर्य पथरीली भूमि वाले क्षेत्र से है। यहाँ एक विशिष्टता दिखती है कि जहाँ जाबल, अनूप या मरुदेश में जल ज्ञान के लक्षण प्रायः वृक्षों या वनस्पतियों पर आधारित हैं वहीं शिलादेश में भूमिवर्ण अथवा शिला के वर्ण के आधार पर जल का ज्ञान बतलाया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ एक महत्त्वपूर्ण विषय और भी है कि वृहत्संहिता में शिलादेश में जल ज्ञान के साथ-साथ शिलाओं को विदीर्ण करने का मार्ग व उपाय भी बतलाए गये हैं। यह उपाय प्राचीन काल के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन बातों को देखने से ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वजों के पास ज्ञान का कितना अगाध भण्डार था और तकनीक भी उन्नत थी जिसके द्वारा समाज के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता था।

1.4 लक्षण के अनुसार जलप्राप्ति के स्थान

ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध में जो क्षेत्र-विभाग बतलाए गए हैं उन क्षेत्रों में विभिन्न लक्षणों के आधार पर जल की स्थिति, शिरा, व मात्रा का ज्ञान भी बतलाया गया है। पूर्व में हमने पढ़ा है कि भूमि को हमारे आचार्यों ने प्रायः चार क्षेत्रों में विभक्त कर जल ज्ञान की रीति बतलाई है। अतः अब उन्हीं क्षेत्र विभागों के अनुसार लक्षणों के आधार पर जलप्राप्ति के स्थानों के सम्बन्ध में हम आगे पढ़ेंगे।

1. लक्षण के अनुसार जाबलदेश में जलप्राप्ति

सारस्वत मुनि के अनुसार

निर्जले वेतसं दृष्ट्वा तस्माद्वृक्षादपि त्रयम्।
पश्चिमायां दिशियोयमघः सार्धेन वै जलम्।।

तथा वराह मिहिर के अनुसार

चिह्नमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरेऽध मृत् पीता।
पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः।।

अर्थात् जाबलक्षेत्र में वेतस (वेद मजनूँ) का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरुष नीचे पश्चिम शिरा का जल होता है। वहाँ खोदने पर कुछ लक्षण दिखते हैं जैसे आधा पुरुष प्रमाण तुल्य खोदने पर पीले वर्ण का मेंढ़क, उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे पत्थर तथा पत्थर के नीचे जल होता है।

इसी प्रकार जल रहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तर दिशा में दो पुरुष नीचे पूर्व शिरा का जल होता है। यहाँ खोदने पर कुछ लक्षण दिखते हैं जैस- एक पुरुष नीचे लौह ग्रन्थ वाली मिट्टी, उसके नीचे कुछ सफेद मिट्टी और उसके नीचे मेढ़क निकलता है। साथ ही यदि जम्बूक (जामुन) के वृक्ष से पूर्व दिशा में समीप ही वल्मीक (बाँबी) हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे मधुर जल मिलता है, तथा यहाँ इस प्रकार के लक्षण दिखते हैं- आधा पुरुष नीचे मछली, उसके नीचे कपोत (कबूतर) वर्ण का पत्थर तथा नीली मिट्टी होती है तो प्रचुर जल होता है।

इसी प्रकार गूलर के वृक्ष से जाबलदेश में जल का ज्ञान बताते हुए वराह मिहिर लिखते हैं-

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे।
पुरुषे सितोऽहिरश्माञ्जनोपमोऽधः शिरा सुजला।।

अर्थात् जलरहित देश में यदि गूलर (उदुम्बर) का वृक्ष दृष्टिगत हो तो उससे हस्तत्रय (तीन हाथ) पश्चिम दिशा में ढ़ाई पुरुष नीचे जल की शिरा होती है। इस स्थान पर उत्खनन में जो लक्षण दिखते हैं वो हैं- आधा पुरुष खोदने पर सफेद सर्प, उसके नीचे काला पत्थर तथा उसके पश्चात् सुस्वाद जल की शिरा प्राप्त होती है।

पुनः अर्जुन के वृक्ष से जल का ज्ञान कराते हुए वराह मिहिर लिखते हैं कि- अर्जुन वृक्ष से तीन हाथ उत्तर दिशा में साढ़े तीन पुरुष नीचे गोह (गोधा), एक पुरुष नीचे सफेद मिट्टी, उसके नीचे काली मिट्टी; पुनः पीली मिट्टी उसके पश्चात् सफेद बालू और उसके बाद अधिक मात्रा में जल प्राप्त होता है।

इसी प्रकार निर्गुण्डी (सिन्दुवार) के वृक्ष से जल का ज्ञान बतलाते हुए वराहमिहिर लिखते हैं कि यदि जाबलक्षेत्र में वल्मीक से युक्त निर्गुण्डी का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में सवा दो पुरुष नीचे जल होता है और यह जल कभी नहीं सूखता है अर्थात् वहाँ प्रचुर मात्रा में जल का भण्डार होता है। यहाँ खनन करने पर आधा पुरुष नीचे लाल मछली, उसके बाद पीली मिट्टी, उसके बाद सफेद मिट्टी तत्पश्चात् पत्थर के कणों से युक्त रेत और उसके नीचे जल प्राप्त होता है।

बेर के वृक्ष से जल का ज्ञान बताते हुए सारस्वत लिखते हैं-

पूर्वभागे वदर्याश्चेद्वल्मीको दृश्यते जलम्।
पश्चाद्धस्त्रये वाच्यं स्वाते तु पुरुषत्रये।।

लक्षण-

अधः श्वाते अर्धऽपुरुषे दृश्यते गृहगोधिका।
श्वेतवर्णा ततोऽधःस्थं जलं भवति निर्मलम्।।

अर्थात् यदि बेर के वृक्ष से पूर्व दिशा में वल्मीक हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल प्राप्त होता है। यहाँ खनन मे इस प्रकार के लक्षण दिखते हैं- आधा पुरुष नीचे गृहगोधिक (छिपकली) दिखती है तथा उसके बाद स्वच्छ जल की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार जलरहित देश में पलाश (ढ़ाक) के वृक्ष से युक्त यदि बेर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है। लक्षण में आचार्य कहते हैं कि खनन में एक पुरुष नीचे "नरे तु दुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चिह्नमेव च" विष रहित सर्प होता है।

इसी प्रकार बेर का वृक्ष गूलर के वृक्ष के साथ यदि जाबलक्षेत्र में हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल प्राप्त होता है और यहाँ का लक्षण है कि आधा पुरुष नीचे काला मेंढ़क प्राप्त होता है।

यदि फल्गु वृक्ष (काकोदुम्बरि) के समीप वल्मीक हो तो उस वल्मीक के सवा तीन पुरुष नीचे पश्चिम शिरा का जल प्राप्त होता है। यहाँ खनन के समय श्वेत व पीत वर्ण की मिट्टी व उसके पश्चात् सफेद पत्थर तथा आधा पुरुष नीचे सफेद चूहा दिखाई पड़ता है।

इसी प्रकार कम्पिल्ल या कपिल वृक्ष के जाबलक्षेत्र में जल का ज्ञान करते हुए वराह मिहिर लिखते हैं कि-

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः।
प्राच्यं हस्तत्रिधये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम्।।

मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता दृश्यते ततस्तस्मिन्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यकः पयोऽल्पं च सक्षारम्।।

अर्थात् जलरहित देश में कपिल/कबीला (कम्पिल्ल) का वृक्ष यदि स्थित हो तो उससे तीन हाथ पूर्व दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे दक्षिण शिरा का जल प्राप्त होता है। खनन के समय लक्षण बताते हुए आचार्य कहते हैं कि यहाँ खनन में सर्वप्रथम नीलकमल के सदृश मिट्टी तथा उसके बाद कपोतवर्ण की मिट्टी और उसके एक हाथ नीचे बकरे के गन्ध की मछली और अन्त में खारा जल प्राप्त होता है। इसी बात को सारस्वत मुनि भी इस प्रकार कहते हैं-

निर्जले यत्र कम्पिल्लो दृश्यस्तस्मात् करत्रये।
प्राच्यांत्रिभिर्नरै सा भवेद् दक्षिणशिरा।।

अधो नीलोत्पलाभसा मृत् कपोतप्रभा क्रमात्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यो जलमल्पशोभनम्।।

इसी प्रकार यदि विभीतक (बहेड़ा) वृक्ष के समीप दक्षिण दिशा में वल्मीक दिखाई दे तो उस

वृक्ष से दो हाथ पूर्व दिशा में डेढ़ पुरुष नीचे जल की शिरा होती है। यदि बहेड़े के वृक्ष से उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा होती है। यहाँ पर खनन करते समय एक पुरुष नीचे विश्वम्भरक (प्राणी विशेष) दिखता है, उसके नीचे केशर के रंग का पत्थर और उसके नीचे पश्चिम शिरा तीन वर्ष के पश्चात् नष्ट हो जाती है अर्थात् उस स्थान पर जल की अल्प मात्रा स्थित होती है।

सप्तपर्ण (छितवन या कोविदारक) के वृक्ष से जल का ज्ञान बताते हुए संहिता ग्रन्थ में लिखा है कि यदि सप्तपर्ण वृक्ष के ईशान कोण में कुशायुक्त श्वेत वल्मीक हो तो उस वृक्ष से और वल्मीक के मध्य में साढ़े पाँच पुरुष नीचे अधिक मात्रा में जल का भण्डार होता है। यहाँ पर खोदते समय जो लक्षण दृश्यमान होते हैं वे हैं- एक पुरुष नीचे कमल पुष्प के मध्य के समान रंग का सर्प, उसके नीचे लाल वर्ण की भूमि, उसके बाद कुरुबिन्द नामक पत्थर और उसके पश्चात् जल प्राप्त होता है। इसी प्रकार यदि सप्तपर्ण का वृक्ष वल्मीक से युक्त हो तो उससे एक हाथ उत्तर दिशा में पाँच पुरुष नीचे जल प्राप्त होता है। यहाँ पर भी वक्ष्यमाण चिह्न मिलते हैं, जैसे- आधा पुरुष नीचे मेंढ़क, उसके बाद पीली मिट्टी, उसके नीचे काला पत्थर और सबसे नीचे मधुर जल वाली उत्तर वाहिनी शिरा प्राप्त होती है।

कञ्जक या करंजक के वृक्ष से जल का ज्ञान करने का वर्णन भी प्राप्त होता है। करंजक के दक्षिण दिशा में यदि वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण में तीन पुरुष नीचे जल की शिरा होती है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे कछुआ, उसके नीचे पूर्ववाहिनी शिरा, उसके नीचे उत्तर वाहिनी शिरा उसके नीचे हरे रंग का पत्थर तत्पश्चात् जल का भण्डार प्राप्त होता है।

2. लक्षण के अनुसार अनूपदेश में जलप्राप्ति

निकटस्थ अथवा सुलभता में जल जहाँ प्राप्त होता है ऐसे अनूप देश के बारे में वराह मिहिर ने लिखा है- "स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामन निकट द्रुमाः समीपजलाः।" अर्थात् जहाँ निर्मल लम्बी डालियों से युक्त छोटे-छोटे विस्तृत वृक्ष हों वहाँ जल निकट में होता है अर्थात् वह अनूपदेश होता है। अब आगे हम ऐसे क्षेत्र में स्थित वृक्षादिकों व लक्षणों के आधार पर जल ज्ञान की सूक्ष्मताओं को समझेंगे।

वल्मीक युक्त तिलक आदि वृक्षों से जल ज्ञान बताते हुए आचार्य वराह मिहिर लिखते हैं-

तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातक बिल्वतिन्दुकाङ्कोलाः।
पिण्डारशिरीषाञ्जनपरुषका वञ्जुलोऽतिवला।।

एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम्।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरेण।।

अर्थात् जहाँ पर निर्मल वल्मीक से युक्त तिलक, आम्रातक (आँवड़ा) वरुणक (वरुण), भिलावा, बेल, तेन्दु (तेन्दुआ), अंकोल पिण्डार, शिरीष, अंजन, परुषक (फालसा), अशोक, अतिवला ये वृक्ष हों वहाँ इन वृक्षों से तीन हाथ उत्तर की दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है।

इसी प्रकार अनूपदेश में यदि तृण (घास) रहित क्षेत्र में कोई एक स्थान तृण से भरा हो अथवा तृण युक्त क्षेत्र में कोई स्थान तृण से रहित हो तो उस स्थान पर साढ़े चार पुरुष नीच जल की

शिरा अथवा धन होता है ऐसा आचार्यों का मत है। जैसा कि वृहत्संहिता में लिखा भी गया है-

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्ये वा धने चास्मिन्।।

काँटे वाले वृक्षों के आधार पर जल का ज्ञान करने के लिए जहाँ काँटे वाले वृक्षों में एक बिना काँटे का हो अथवा बिना काँटे वाले वृक्षों में एक काँटे वाला हो तो वहाँ उस वृक्ष से तीन हाथ पश्चिम दिशा में तीन हाथ दूरी पर पश्चिम दिशा में एक तिहाई युत तीन पुरुष नीचे जल या धन होता है।

अनूपदेश में जहाँ पाँव से तीन (प्रहार) करने पर गम्भीर बाद (स्वर) हो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे उत्तर शिरा का जल होता है। साथ ही ऐसे क्षेत्र में वृक्ष की एक शाखा नीचे की ओर झुकी या पीली पड़ गई हो तो उस शाखा के नीचे तीन पुरुष खनन करने पर जल प्राप्त होता है। इसी प्रकार जहाँ काँटों से रहित और सफेद पुष्प से युक्त कटेरी का वृक्ष दृष्टिगोचर हो उस वृक्ष के नीचे साढ़े तीन पुरुष खोदने पर जल प्राप्त होता है। सफेद पुष्प वाला कर्णिकार (कठचम्पा) या ढ़ाक का वृक्ष अनूप क्षेत्र में हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे जल की प्राप्ति होती है।

3. लक्षण के अनुसार मरुदेश में जलप्राप्ति

जैसा कि हमें ज्ञात है मरुदेश में खर्जूर, ताड़ आदि के वृक्ष बहुतायत में प्राप्त होते हैं अतः खर्जूर के वृक्ष से जल ज्ञान बतलाते हुए वराह मिहिर बृहत्संहिता में लिखते हैं-

खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे।
तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषैर्वारि।।

अर्थात् जिस जल रहित देश में दो शिर वाला खजूर का वृक्ष हो वहाँ उस वृक्ष से दो हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल होता है। इसी बात को सारस्वत मुनि भी इस प्रकार कहते हैं-

खर्जूरी द्विशिरस्का स्यान्निर्जले चेत् करद्वये।
निर्देशां पश्चिमेवारिखल्वाऽधः पुरुषत्रयम।।

मरुदेश में ताड़ या नारियल के वृक्ष भी पाए जाते हैं अतः इन वृक्षों से जल का ज्ञान सम्भव होता है। इसीलिए बृहत्संहिताकार लिखते हैं-

वल्मीकसंवृत्तो यदि तालो वा भवति नालिकेशे वा।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या।।

अर्थात् यदि वल्मीक से युक्त ताड़ (ताल) या नारिकेल (नारियल) का वृक्ष हो तो उस वृक्ष से छः हाथ पश्चिम दिशा में चार पुरुष नीचे दक्षिण वाहिनी शिरा का जल होता है। मरुदेश में यदि पीलु (पिलुआ) का वृक्ष स्थित हो तथा उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पश्चिम दिशा में पाँच पुरुष नीचे उत्तर शिरा होती है। यहाँ खनन का लक्षण बताते हुए आचार्यों ने लिखा है- एक पुरुष नीचे मेंढ़क, उसके नीचे पीली तथा हरी मिट्टी उसके नीचे पत्थर और उसके नीचे जल होता है।

इसी प्रकार करील (करीट), रोहितक, अर्जुन, धतूरा, बेर और करील की संयुति, अर्जुन-करील अथवा अर्जुन-बेर की संयुति से भी जल ज्ञान करना बतलाया गया है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात

है कि बीस-पचीस पुरुष नीचे तक जल की स्थिति का वर्णन आचार्यों ने किया है, जो मरुदेश के अनुकूल है।

4. लक्षण के अनुसार शिलादेश में जलप्राप्ति

पूर्व में शिलादेश के वर्णन में हम पढ़ चुके हैं कि शिलादेश का तात्पर्य पथरीली या पठारी भूमि से है। अतः अब हम यहाँ ऐसी भूमि पर जलप्राप्ति के लक्षण द्वारा जल का ज्ञान करेंगे। सर्वप्रथम एक ऐसा लक्षण जो किसी को भी आसानी से दिख जाए उसका वर्णन करते हुए वराह मिहिर लिखते हैं- "स्यात्पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्यस्तत्रापि मूले परुषत्रयेऽम्भः।" इसी लक्षण को मनु ने भी-

"गिरेरुपरि यात्रान्यः पर्वततः स्यात् ततो जलम्।
तस्यैव मूले पुरुषैस्त्रि भिर्वाऽधो विनिर्दिशेत्।।"

इस प्रकार से बतलाया है, जिसका अर्थ है कि जहाँ पर एक पर्वत (शिला) के ऊपर दूसरा पर्वत हो वहाँ पर तीन पुरुष नीचे जल होता है। इसी प्रकार पत्थर के कणों से युक्त काली, लाल या नीली मिट्टी की भूमि पर कुश, काश या मूंज उगा हो तो वहाँ पर बहुत ही मधुर जल का स्रोत होता है।

इस प्रकार वृक्षों के आधार पर जलस्रोत का ज्ञान करने के अतिरिक्त शिलादेश में पत्थरों के वर्ण (रंग) के आधार पर जलज्ञान करना सबसे उपयुक्त होता है। इस विषय में आचार्यों का मत अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पत्थरों के वर्णानुसार जलज्ञान के अवसर पर वराह मिहिर लिखते हैं-

वैद्वर्यमुद्गाम्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा।
भबाळजनाभा कपिलधावा या ज्ञेया शिला भूरिसमीपलेया।।

तथा

पारावत क्षौद्र घृतोपमा या क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा।
या सोमवल्लचाक्ष समानरूपा साप्यांशु तोयं कुरुतेऽक्षयं च।।

अर्थात् वैदूर्य मणि के समान, मूंग या मेघ के समान काला, मकने वाले गूलर के फल के समान, फोड़ने से अञ्जन के समान पीला या काला पत्थर जहाँ हो वहाँ समीप में ही बहुत जल होता है। इसी प्रकार कबूतर, शहद, घृत या सोमलता के समान रंग वाला पत्थर जहाँ पर हो वहाँ पर कभी नष्ट नहीं होने वाला जल शीघ्र निकलता है।

पत्थरों के वर्ण के अतिरिक्त बहुत से पत्थर विचित्र बिन्दुओं से युक्त होते हैं अथवा बहुत से सामान्य पत्थर भी स्फटिक या मोती आदि के समान कान्ति वाले होते हैं। अतः उनके आधार पर भी जल का ज्ञान किया जा सकता है। यथा-

ताम्रैः समेता पृषतेर्विचित्रैशपाण्डु भष्मोष्ट्र खरानुरूपा।
भृबोपमाबुष्टिकपुष्पिका वा सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया।।

एवञ्च

चन्द्रातपस्फटिकमौक्तिकहेमरूपा याश्चेन्द्रनीलमणि हिबुलुकाळजनाभाः।
सूर्योदयांशुहरितालविभाश्च याः स्युक्ताः शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तयेतत्।।

अर्थात् ताम्रवर्ण के बिन्दुओं (धब्बों) से युक्त, विचित्रवर्ण के बिन्दुओं से युक्त, पाण्डु वर्ण वाला, भस्म, ऊँट या गदहे के समान वर्ण वाला, अबुष्ठिका वृक्ष के समान नीला, सूर्य या अग्नि के समान वर्ण वाला पत्थर जहाँ हो वहाँ पर जल नहीं होता है। परन्तु चन्द्रकिरण, स्फटिक, मोती, सोना, इन्द्रनीलमणि, सिंगरफ, अंजन, उदयकालिक सूर्य किरण और हरिताल के समान रंग वाला या द्युति वाला पत्थर शुभ होता है, अर्थात् वहाँ जल होता है।

1.5 जलज्ञान के अन्य कारक तत्त्व

विभिन्न क्षेत्रों में अवस्थित वृक्षों, गुल्मों या पत्थरों आदि के द्वारा किस प्रकार उस क्षेत्र में जल का ज्ञान किया जा सकता है इसको हमने क्षेत्र विशेष के आधार पर पूर्व में पढ़ा। अब हम कुछ ऐसे लक्षणों को जानेंगे जिनके आधार पर किसी स्थान पर जल का ज्ञान किया जा सकता है। जैसे-

जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽअनूपजानि चिह्नानि।
वीरणदूर्व मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे।।

भार्बी त्रिवृत्ता दन्ती सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव।
नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः।।

अर्थात् यदि जलरहित देश में बहुत जल वाले देश के चिह्न दिखाई दें तथा जहाँ पर वीरण (गाँडर) और दूर्वा अधिक कोमल हों वहाँ एक पुरुष नीचे जल होता है। एवमेव जहाँ पर मंगरैया, निसोत, इन्द्रदन्ती (दंतिया), सूकपादी, लक्ष्मणा आदि औषधियाँ हो वहाँ से दो हाथ दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल मिलता है।

भूमि को पाँव से ताड़न (चोट) करके भी जल की स्थिति ज्ञात की जा सकती है। यदि भूमि को पाँव से ताड़न करने पर गम्भीर शब्द हों तो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे जल व उत्तर शिरा होती है ऐसा वराह मिहिर व सारस्वत मुनि का वचन है। इसी प्रकार वाष्प और धूप देखकर भी जल का पता लगाया जा सकता है। जैसे-

यस्यामूष्मा धात्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोय प्रवोहेण।।

अर्थात् जिस स्थान से भाप या धुआँ, निकलता हुआ दिखाई दे वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा जाननी चाहिए।

इसी प्रकार जहाँ स्निग्ध, नीची, रेतदार (बालू युक्त), और पाँव रखने से शब्द करने वाली भूमि हो वहाँ भी साढ़े चार या पाँच पुरुष नीचे जल का स्रोत जानना चाहिए। ऐसा सारस्वत मुनि का कहना है-

एकवर्णा मही यत्र वृक्षगुल्मतृणादिभिः।
वल्मीकैश्चापि रहिता तस्यां तत्र विपर्यय्यः।।
पञ्चाभिः पुरुषैस्तत्र जलं भूमावधः स्थितम्।

इस प्रकार भूमि के अन्दर स्थित जल का ज्ञान शास्त्रोक्त विधि से सुगमता पूर्वक किया जा

सकता है, साथ ही इस प्रकार जल के ज्ञान की विधि से धन व समय की बचत के साथ सामान्य मानव भी इसका उपयोग कर सकता है।

1.6 जलशुद्धि के प्रकार

भूगर्भ से प्राप्त जल पूर्व के समय में वापी (कुंआ) अथवा तड़ाग (तालाब) में संचित होता था तथा इसका उपयोग दैनिक कार्यों हेतु किया जाता था। कूंए ही मुख्य रूप से जल प्राप्ति के साधन होते थे। इन कूपों का जल विभिन्न कारणों से दूषित हो जाता था अथवा कुछ स्थानों पर जल का स्वाद उपयुक्त नहीं होता था। इसलिए इस दूषित जल से जलजनित रोगों की सम्भावना रहती थी। अतएव आचार्यो ने भारतीय शास्त्रों में इनके शुद्धार्थ औषधियों के प्रक्षेपण का विधान किया है। यह औषधियाँ आज भी प्रयोग की जा सकती हैं। कूप में डालने के लिए द्रव्यों का वर्णन करते हुए वराह मिहिर कहते हैं-

अञ्जनमुस्तोशीरैः शराजकोशातकामलक चूर्णैः।
कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः।।

अर्थात् अञ्जन, मोथा, खश, राजकोशातक, आँवला, कतक का फल इन सभी का चूर्ण बनाकर कूंए में डालना चाहिए। इन औषधि से क्या लाभ होता है यह स्पष्ट करते हुए लिखा है-

कलुषं कटकं लवणं विरसं सलिलं यदि वाशुभगन्धि भवेत्।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम्।।

इन द्रव्यों के प्रयोग से गन्दला, कड़ुआ, खारा, बेस्वाद या दुर्गन्ध वाला जल निर्मल, मधुर, सुगन्धित और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है।

1.6 सारांश

वर्तमान में एक उक्ति प्रचलित है "जल ही जीवन है।" यह उक्ति सार्वकालिक है, क्योंकि जल के बिना प्राणियों के जीवन की कल्पना भी असम्भव है। इस इकाई के अध्ययन से हम भूगर्भ में स्थित जल का ज्ञान भूमि पर वृक्ष, लता, गुल्म आदि के साथ ही पत्थरों आदि से भी कर सकते हैं। यह ज्ञान हमारे आचार्यो के सतत निरीक्षण, परिश्रम, व अलौकिक ज्ञान का फल है। यद्यपि वर्तमान समय में हमारे वैज्ञानिकों ने ऐसे यन्त्रों का निर्माण कर लिया है जिसके द्वारा भूजल का पता लगाया जा सकता है। परन्तु इन यन्त्रों का प्रयोग सभी के लिए व सर्वत्र सुलभ नहीं है। साथ ही इन यन्त्रों के प्रयोग के लिए विशिष्ट व्यक्तियों व धन की भी आवश्यकता होगी। इसके उपरान्त भी भूगर्भ में स्थित इस जल का स्वाद, गन्ध आदि जान पाना सम्भव नहीं है। ऐसी परिस्थिति में दकार्गल का ज्ञान हम सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

दकार्गल के शास्त्र विधि का प्रयोग करते समय हमें देश-काल व परिस्थिति का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होगी ऐसा मेरा मत है। क्योंकि यह ज्ञान सैकड़ों वर्ष पुराना है। उस समय जनसंख्या अल्प थी व जलदोहन की मात्रा भी सीमित थी। साथ ही अधिकांश भूभाग वनाच्छादित था व वर्षा भी उपयुक्त थी अतः जलस्तर उच्चतम रहा होगा। यहाँ वर्तमान परिवेश के दृष्टिगत हमें भूजल की गहराई में भिन्नता प्राप्त होगी अतः गहराई के ज्ञान हेतु विवेक का प्रयोग करना चाहिए।

1.7 शब्दावली

1. दकार्गल = जिसके द्वारा बन्धनों को हटाकर जल की प्राप्ति हो। "दकार्गल येन जलोपलब्धिः।"
2. जाबलदेश = जिस भूभाग में भूजल की मात्रा न्यून हो।
3. अनूपदेश = प्रचुर भूजल वाला भूभाग अनूपदेश होता है।
4. मरुदेश = बालुका से युक्त अत्यल्प भूजल वाला क्षेत्र।
5. शिलादेश = पठारी क्षेत्र अथवा पथरीली भूमि वाल क्षेत्र।
6. शिरा = भूमि के अन्दर जल की नाड़ी सदृश संरचना।
7. वल्मीक = बांबी या छिद्र जिसके अन्दर भूमि में चीटियाँ या कीड़े-मकोड़े रहते हैं।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

बृहत्संहिता,
वास्तुरत्नाकर,
मनुस्मृति।

1.9 बोधप्रश्न

1. दकार्गल से आप क्या समझते हैं?
2. भू-जल के ज्ञानार्थ भूमि को कितने क्षेत्रों में विभक्त किया गया है?
3. जाबलदेश का लक्षण क्या है?
4. अनूपदेश से आप क्या समझते हैं?
5. मरुदेश का लक्षण बताएँ?
6. जाबलक्षेत्र में जलप्राप्ति के कुछ लक्षणों का वर्णन करें?
7. अनूपक्षेत्र में किन लक्षणों के आधार पर जल का ज्ञान हो सकता है?
8. शिलाओं के वर्ण व आकार के अनुसार किस क्षेत्र में जल का ज्ञान करते हैं? उदाहरण सहित लिखें?

ईकाई 2 वृष्टि-विवेचन

पाठयोजना

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 वृष्टि - एक शास्त्रीय विमर्श
2.4 वृष्टि ज्ञानार्थ संवत्सर के राजा, मन्त्री मेघ व जलाढ़क का शोधन।
2.5 पौष्यवृष्टि विज्ञान।
2.6 मासानुसार वृष्टि का ज्ञान
2.7 मेघों का गर्भधारण
2.8 नक्षत्रों के द्वारा वृष्टिज्ञान
2.9 सद्योवृष्टि (सद्योवृष्टि)
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.13 बोधप्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप वृष्टि का परिचय व स्वरूप बता सकेंगे।

- मेघ, वायु व मेघों के गर्भधारण के लक्षणों को भलीभांति समझ सकेंगे।
- नक्षत्रों के संयोग व स्थितिवश वृष्टि का ज्ञान व वृष्टि के प्रमाण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आकस्मिक वर्षा का ज्ञान करने में सक्षम होंगे।
- वृष्टि कारक ग्रह-नक्षत्रों के विभिन्न योगों से परिचित हो सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

समस्त प्राणधारकों का प्राण अन्न को कहा गया है और अन्न की उत्पत्ति वर्षा के अधीन है-

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम्।
यस्मादतः परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन।।

वस्तुतः हमारा भारत देश कृषि प्रधान राष्ट्र है और हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या कृषिकर्म पर आश्रित है। कृषिकार्य के लिए वर्षाजल की आश्रयता सर्वविदित है। साथ ही भूगर्भस्थ जल की उपलब्धता भी वर्षा पर ही आधारित है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने वर्षाजल के लिए मेघों की संरचना, उनकी उत्पत्ति का काल, दिशा व ग्रह-नक्षत्रादिकों की युति आदि का गम्भीर

विवेचन किया है। इसी प्रकार वर्षा में मेघों के साथ-साथ वायु का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वायु ही मेघों की वाहक होती हैं तथा वर्षा किस क्षेत्र में होगी इसका निर्धारण वायु के आधार पर ही होता है। अतएव हमारे पूर्वाचार्यों ने इनका विस्तृत विवेचन विभिन्न ग्रन्थों में किया है। ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध का यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। इसी के आधार पर हमारे पञ्चाङ्गों में वृष्टि की स्थिति व प्रमाण का वर्णन लिखा जाता है, जो अत्यन्त समाजोपयोगी है। इस वर्तमान वैज्ञानिक युग में वर्षा व मौसम के ज्ञान के लिए सभी देश विभिन्न सेटलाइटों का प्रक्षेपण करते हैं जिससे वर्षा का ज्ञान हो सके। वैज्ञानिक विधि द्वारा वर्षा का ज्ञान हो सके। वैज्ञानिक विधि द्वारा जहाँ वृष्टिज्ञान के लिए अरबों-खरबों रुपए की आवश्यकता होती है फिर भी मात्र कुछ दिनों पूर्व ही हमें वृष्टि का ज्ञान प्राप्त हो पाता है। ठीक इसके विपरीत यदि हम शास्त्रीय विधि का प्रयोग करें तो बिना किसी धन के कई माह पहले वृष्टि का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और यह कृषिकर्म के लिए ज्यादा मजबूत होगा। इसीलिए तो आचार्य पराशर ने अपने ग्रन्थ "कृषि-पराशरः" में लिखा है-

वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।।

वृष्टि के सन्दर्भ में सर्वविदित तथ्य है कि सूर्य की रश्मियाँ वाष्प रूप में जल का संग्रह कर मेघरूप में परिवर्तित कर समयानुसार वृष्टि करती हैं। परन्तु इस विषय में पुराणों की दृष्टि सर्वथा भिन्न व सूक्ष्म प्रतीत होती है। पुराणों में सूर्य रश्मियों के अतिरिक्त चन्द्रमा व वायु की भी प्रमुख भूमिका महर्षि व्यास बताते हैं, और वायु पुराण में लिखते हैं-

आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम्।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्तते।।

यत् सोमात् स्रवते सूर्यं तदभ्रेष्ववतिष्ठते।
मेघा वायु-निघातेन विसृजन्ति जलं भुवि।।

इस प्रकार यदि अर्वाचीन व प्राचीन दोनों मतों को देखें, इनके परिणामों व व्यय की तुलना करें तो प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रदत्त यह ज्ञान वृष्टि के विवेचन में ज्यादा उपयुक्त है। मात्र आवश्यकता इस बात की है कि इस विषय पर और गहन शोध व मन्थन किया जाए।

2.3 वृष्टि - एक शास्त्रीय विमर्श

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि हमें जीवित रहने के लिए अन्न की आवश्यकता है तथा अन्न के लिए वर्षा परमावश्यक है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने वृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्योतिष शास्त्र में इसका बृहद् वर्णन किया है। भारतीय सिद्धान्तों में वृष्टि व अनावृष्टि का पूर्वानुमान ग्रहस्थिति, वायुगति, तथा विशिष्ट काल में आकाशीय लक्षणों के आधार पर की जाती है। यही कारण है कि वृष्टि का महीनों पहले भी अनुमान लगाया जा सकता है। वर्षा के पूर्वानुमान की अनेक विधियाँ ज्योतिष शास्त्र व पुराणों में वर्णित हैं। जैसा कि पूर्व में ही हमने कहा है कि महर्षि व्यास ने वायुपुराण में "आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं ...." इत्यादि श्लोक में बताया है कि केवल सूर्य रश्मियाँ ही वृष्टि सर्जक नहीं होतीं अपितु इसमें वायु और चन्द्रमा की भी प्रमुख भूमिका होती है। इस कथन से मेघों के सन्दर्भ में दो बातें स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख आती हैं-

मेघ केवल वाष्प नहीं होते, उनका अस्तित्व वाष्प से भिन्न है।

सूर्य जल का केवल वाष्पीकरण करता है, न कि मेघीकरण। यह बात निम्न श्लोक से और भी स्पष्ट हो जाती है-

आदित्यरश्मिभिर्पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति।
पुनः पतति तद् भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः।।

इतना तो स्पष्ट है कि वृष्टि में सूर्य रश्मियों से वाष्पित जल ही मुख्य कारक है, परन्तु मात्र इस एक प्रक्रिया से ही वृष्टि नहीं हो सकती। ज्योतिष शास्त्र वृष्टि ज्ञान हेतु पाँच अवयवों पर ध्यान देता है- 1. वायु, 2. मेघ, 3. ग्रहचार, 4. भूमि, 5. सद्योवृष्टि लक्षण।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र की यह विशेषता है कि ग्रहगति व ग्रहस्थितियों के आधार पर वर्षों पूर्व वृष्टि का अनुमान कर सकता है। इसके साक्षी भारतीय पळचाब हैं। यद्यपि वृष्टि के पूर्वानुमान की भविष्यवाणियों में त्रुटियां भी दृष्टिगोचर होती हैं परन्तु यह त्रुटियां सद्योवृष्टि लक्षण के कारण अधिकतर होती हैं और इनका पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। सद्योवृष्टि लक्षण में उन तथ्यों को विचार की श्रेणी में रखा गया है जिनका प्रभाव तत्काल पड़ता है तथा ऐसी उत्पन्न स्थितियों से प्राकृतिक अवस्था में तत्काल परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ-

असन्नमर्कं शीतांशो परिवेशगतोत्तरा।
विद्युत्-प्रपूर्ण-मण्डूकस्त्वनावृष्टिर्भवेत्तदा।।

पुरः पृष्ठतो भानोर्ग्रहा यदि समीपगाः।
तदा वृष्टिं प्रकुर्वन्ति न चेत् प्रति लोमगाः।।

- आर्षवर्षा, वायुविज्ञानम्, (पृ-274)

अर्थात् सूर्य-चन्द्र मण्डलों पर परिवेषादि होने तथा इनकी गतियों व इनकी विशिष्ट स्थितियों के कारण प्रकृति में परिवर्तन होता है, जिसका परिणाम वायु और मेघों पर पड़ता है जो वृष्टि के मुख्य घटक होते हैं। इसके परिणाम स्वरूप-

अतिवातं च निर्वातम् अत्युष्णं चाति शीतलम्।
अत्यभ्रश्च निरभ्रश्च षड्विधं मेघलक्षणम्।।

अर्थात् वायु की गति में खास-वृद्धि तथा वातावरण में अत्युष्णता या शीतलता की उत्पत्ति वृष्टि के नियत काल में परिवर्तन कर देती है। निष्कर्ष रूप में वृष्टि का कारण ज्योतिषशास्त्र के सन्दर्भ से यही है कि सूर्य की उष्मा से जल वाष्पीभूत होकर चन्द्ररश्मियों की शीतलता से पुनः आर्द्र होता है तथा अनुकूल एवं आह्लादकारी पवन के सहयोग से आद्र वाष्प मेघों में समाहित होता है। आर्द्र वाष्प से मोघों में संघनन होता है तथा जितनी अनुकूल उर्ध्ववायु प्राप्त होती है उतनी मात्रा में मेघों में संघनन होता है। इसी प्रक्रिया को मेघगर्भ कहा गया है, तथा इसी गर्भधारण के अनुसार वृष्टि के परिणाम व स्थिति का विवेचन किया जाता है।

ज्योतिषशास्त्र के संहिता ग्रन्थों में वृष्टि का व्यापक विवेचन प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों में वर्षा के काल ज्ञान के साथ-साथ वर्षा के स्थान, प्रभावित क्षेत्र व वर्षा के माप का भी ज्ञान करने की विधि बतलाई गई है। वृष्टि से सम्बन्धित कुछ निमित्त बतलाए गए हैं, उनके आधार पर वृष्टि की व्यापकता का ज्ञान किया जा सकता है, जैसा कि वराहमिहिर के वचन से ज्ञात होता है-

पञ्चानिमितैः शतयोजनं तदर्द्धार्द्धमेकहन्यात्।
वर्षति पञ्चनिमित्ताद्रूपेणैकेन यो गर्भः।। (वृ. सं., पृ.-160)

अर्थात् पाँच निमित्तों से युक्त गर्भ 100 योजन (800 मील) तक वर्षा करता है। चार निमित्तों से युक्त गर्भ 50 योजन (400 मील) तक वृष्टि करता है। वर्षा के जल का परिमाण जानने के लिए 'आढ़क' को मापदण्ड माना गया है।

2.4 वृष्टि ज्ञानार्थ संवत्सर के राजा, मन्त्री, मेघ व जल के आढ़क का शोधन

जैसा कि पूर्व में ही हम यह पढ़ चुके हैं कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र वर्षों पूर्व ही वृष्टि का पूर्वानुमान करने में सक्षम हैं। इसके लिए हमें कुछ सूत्र प्राप्त होते हैं जिनके प्रयोग से हम पूर्वानुमान कर सकते हैं। इस कार्य हेतु जिस संवत्सर में वृष्टि का ज्ञान करना हो उस संवत्सर का राजा, मन्त्री व मेघ का साधन करना पड़ता है-

अतो वत्सरराजानं मन्त्रिणं मेघमेव च।
आढ़कं सलिलस्यापि वृष्टिज्ञानम शोधयेत्।। (कृषि पारा., श्लोक-2)

राजानयनम्

वृष्टिज्ञान के लिए जिस वर्ष में वृष्टि का ज्ञान अभीष्ट होता है उस वर्ष के राजा व मन्त्री का ज्ञान सर्वप्रथम आवश्यक है। इस विषय में आचार्य पाराशर का मत है-

शाकं त्रिगुणितं कृत्वा द्वियुतं मुनिना हरेत्।
भागशिष्टो नृपो ज्ञेयो नृपामन्त्री चतुर्थकः।। (कृषि पारा., श्लोक-3)

अर्थात् शक संवत् को 3 से गुणाकर गुणनफल में 2 जोड़कर 7 का भाग देने पर जो शेष बचे वह राजा होता है तथा उससे चौथा मन्त्री होता है। यहाँ शेषांक की गणना सूर्य से प्रारम्भ होती है तथा शनि पर्यन्त सातों ग्रह होते हैं।

उदाहरण: शाके 1944 संवत् 2079 में वृष्टिज्ञान हेतु राजा व मन्त्री का ज्ञान अभीष्ट है, तो सूत्र-

(शाके ग् 3) $ 2 = प्राप्त फल
प्राप्त फल » 7 = प्राप्त शेष राजा, इससे चतुर्थ मन्त्री।
अतः
शाके 1944 ग् 3 $ 2 = 5832 $ 2 = 5834
7) 5834 (833
56
23
21
24
21
3 शेष

सूर्य से गिनने पर तीसरा मंगल इस वर्ष का राजा हुआ, तथा मंगल से चतुर्थ शुक्र मन्त्री होगा।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार राजा व मन्त्री आनयन

सूर्य सिद्धान्त में राजा व मन्त्री के आनयन की विधि निम्न प्रकार से है-

मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिहनं रूप संयुतम्।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्ष पौ।। (सू. सि. मध्य., श्लोक-52)

अर्थात् वर्षपति जानने के लिए अहर्गण को 360 से अथवा सावन मासों की संख्या को 12 से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त होती है उतने गत सावन वर्ष होते हैं। गत सावन वर्ष को दो और तीन से गुणाकर 1 जोड़ दें और 7 का भाग देने पर जो शेष बचे (सप्ताह के उसी दिन का स्वामी वर्तमान सावन वर्ष का स्वामी होता है।

पञ्चाङ्गों में निर्दिष्ट वर्षपति:-

सूर्यसिद्धान्त के उपर्युक्त नियम तथा पराशरोक्त नियम व संहिता ग्रन्थों में वर्णित नियमों से भिन्न प्रकार से आजकल के पञ्चाङ्गों में वर्षेश (वर्षपति) का साधन किया जाता है। जिस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होती है उसी दिन का स्वामी पञ्चाङ्गों में वर्षेश (वर्षपति) माना जाता है। इसी प्रकार मन्त्री आनयन हेतु जिस दिन मेष संक्रान्ति होती है उस दिन के स्वामी का ग्रहण किया जाता है। मेघेश उस दिन का स्वामी होता है जिस दिन आर्द्रा नक्षत्र का आरम्भ होता है। मकरन्द सारणी में आचार्य मकरन्द ने इस नियम का उल्लेख इस प्रकार किया है-

चैत्रशुक्लप्रतिपद्दिवसे यो वारः स राजा।
मेषसंक्रान्तिदिवसे यो वारः स मन्त्री।।

कर्कसंक्रान्तिदिवसे यो वारः स सस्याधिपः।
तुलासंक्रान्तिदिवसे यो वारः स नीरसाधिपः।।

आर्द्राप्रवेशदिवसे यो वारः स मेघाधिपः।
धनुःसंक्रान्तिदिवसे यो वारः स पश्चिमधान्याधिपः।।

वस्तुतः वर्तमान प्रायः सभी पञ्चाङ्गों में मकरन्द सारणी के अनुसार ही वर्षपति, मन्त्री आदि का आनयन दृष्टिगोचर होता है।

वर्षपति (वर्षेश) के अनुसार वृष्टि का निर्धारण

वर्षपति के आनयन के उपरान्त जो ग्रह उस वर्ष का स्वामी (राजा) होता है उसके अनुसार उस वर्ष में कैसी वर्षा होगी इसका कथन आचार्यों ने किया है। यथा-

चित्तलार्के नृपे वृष्टिर्वृष्टिरुग्रा निशापतौ।
वृष्टिर्मन्दा सदा भौमे चन्द्रजे वृष्टिरुत्तमा।। (बृ. परा., श्लोक-4)

अर्थात् यदि वर्षपति सूर्य हो तो सामान्य (खण्ड) वृष्टि, चन्द्रमा के राजा होने पर उग्र (भयंकर) वर्षा, मंगल के राजा होने पर सदा मन्द वृष्टि तथा बुध के राजा होने पर उत्तम वृष्टि होती है।

गुरौ च शोभना वृष्टिर्भार्गवे वृष्टिरुत्तमा।

पृथिवी धूलिसम्पूर्णा वृष्टिहीना शनौ भवेत्।। (वृ. पारा., श्लोक-5)

यदि राजा बृहस्पति हो तो सुन्दर वृष्टि, शुक्र के राजा होने पर उत्तम वर्षा तथा शनि के राजा होने पर पृथ्वी धूलि से पूर्ण अर्थात् वृष्टि रहित होती है।

मन्त्री का फल

जिस प्रकार वर्षपति (राजा) के अनुसार वर्षा का फलादेश किया गया है उसी प्रकार उन ग्रहों के वर्ष मन्त्री होने का फल अर्थात् वृष्टि समझनी चाहिए ऐसा आचार्य पाराशर का मत है। यथा-

यथा वृष्टिफलं प्रोक्तं वत्सरग्रहभूपतौ।
तद्वद्वृष्टिफलं ज्ञेयं विज्ञैर्वत्सरमन्त्रिणि।।

मेघानायनम्

राजा व मन्त्री के आनयन के पश्चात् वृष्टि ज्ञानार्थ मेघ का आनयन भी करना चाहिए। यथा-

शकाब्दं वह्निसंयुक्तं वेदभागसमावृत्तम्।
शेषं मेघं विजानीयादावर्तादि यथाक्रमम्।। (कृषि पारा., श्लोक-14)

अर्थात् मेघानयन के लिए शकाब्द में 3 जोड़कर चार से भाग देने पर शेष संख्या तुल्य आवर्तादि क्रम से मेघ होते हैं।

उदाहरण: शकाब्द 1944 संवत् 2079 में मेघानयन यदि अभीष्ट है तो सूत्रानुसार-

शकाब्द \$ 3/4 = प्राप्त शेष (अवर्तादिक्रम से मेघ होंगे)।

अतः

1944 \$ 3/4 = 4) 1947(486
16
34
32
27
24
3 शेष

अतः इस शकाब्द वर्ष में मेघेश तीसरा अर्थात् पुष्करनामक मेघ होगा।

विशेष: मेघ भी कई प्रकार के होते हैं जिनमें चार प्रकार के मेघ जलद अर्थात् वर्षा करने वाले होते हैं। इनके नाम हैं-

1. आवर्त्त, 2. संवर्त्त, 3. पुष्कर, 4. द्रोण।

आवर्तश्चैव संवर्तः पुष्करो द्रोण एवं च।
चत्वारो जलदाः प्रोक्ता आवर्तादि यथाक्रमम्।। (कृषि पारा., श्लोक-15)

उपरोक्त चारों मेघों का फल बताते हुए आचार्य पाराशर लिखते हैं-

एकादेशेन चावर्तः संवर्तः सर्वतो जलम्।
पुष्करे दुष्करे वारि द्रोणे बहुजला मही।।

अर्थात् आवर्त मेघेश हो तो क्षेत्र विशेष (एकादेश) में वृष्टि, तथा संवर्त के मेघेश होने पर सर्वत्र वृष्टि होती है। पुष्कर में अत्यल्प जल व द्रोण में पृथ्वी पर बहुत वृष्टि होती है।

जलाढ़क निर्णय

किसी वर्ष वर्षा का माप करने के लिए प्राचीन काल में आढ़क का मान प्रचलित था। यह आढ़क सम्पूर्ण क्षेत्र का वर्षा माप होता था। जैसे आजकल मिलीमीटर में मापा जाता है। इस सम्बन्ध में जलाढ़क का माप स्पष्ट करते हुए पाराशर का मत है-

शतयोजनविस्तीर्णं त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितम्।
आढ़कस्य भवेन्मानं मुनिभिः परिकीर्तितम्।। (कृषि पारा., श्लोक-17)

अर्थात् मुनियों ने आढ़क का मान सौ योजन विस्तीर्ण एवं तीस योजन गहरा (ऊँचा) बताया है।

इसी प्रकार आढ़क से अधिक माप हेतु द्रोण का प्रयोग किया जाता है। यथा-

आढ़कांश्चतुरो द्रोणमपां विन्द्यात् प्रमाणतः।
धनुः प्रमाणं मेन्द्रिन्या विन्द्याद्द्रोणातिवर्षणम्।।

वस्तुतः आढ़क का जो मान पाराशर ने बताया है वह सम्पूर्ण पृथ्वी पर होने वाली वर्षा का माप है, क्योंकि वह आगे कहते हैं-

समुद्रे दशभागांश्च षड्भागनामि पर्वते।
पृथिव्यां चतुरो भागान् सदा वर्षति वासवः।।

अर्थात् इन्द्र सम्पूर्ण वृष्टि का दश (10) भाग समुद्र में, षड् (6) भाग पर्वतों पर तथा चार (4) भाग पृथ्वी पर करते हैं।

इससे भिन्न वर्षा के जल मापन करने की विधि बतलाते हुए वराह मिहिर ने लिखा है-

हस्तविशालं कुण्डमाधिकृत्याम्बु प्रमाणानिर्देशः।
पञ्चाशत्पलमाढ़कमनेन मिनुयाज्जलं पतितम्।। (बृ. सं., पृ.-164)

अर्थात् एक हाथ तुल्य व्यास वाले और एक हाथ गहरे वृत्ताकार कुण्ड में पचास पल (एक आढ़क) तुल्य जल समाता है। पचास पल का एक आढ़क और चार आढ़क का एक द्रोण होता है।

2.5 पौष्यवृष्टि विज्ञान

आचार्यों का मत है कि पौष मास की प्रतिदिन वायु परीक्षा वर्ष के 12 मासों में होने वाली वृष्टि व अनावृष्टि की परिचायक होती है। इस सम्बन्ध में आचार्य पाराशर का मत है-

सार्द्धं दिनद्वयं मानं कृत्वा पौषादिना बुधः।
गणयेन्मासिकीं वृष्टिमवृष्टिं वानिलक्रमात्।।

अर्थात् बुद्धिमान् व्यक्ति को ढ़ाई दिनों के परिमाण से पौषादि मासों के क्रम से प्रत्येक मास की वृष्टि अथवा अनावृष्टि की गणना वायु के प्रवाह के अनुसार करनी चाहिए।

वस्तुतः पौष्यवृष्टि विज्ञान हेतु पौष मास के 30 दिनों (तिथियों) को 12 भागों में विभक्त करने पर प्रत्येक भाग एक-एक मास का द्योतक होता है। जैसे- 30 » 12 = 2 1ध्2 दिन। यह एक मास का द्योतक होगा। इसी प्रकार पौष मास के 30 दिनों में ही 12 मासों की गणना की जाएगी। यथा-

पौषशुक्ल:-

1 $ 2 $ 3ध्2
प्रतिपदा $ द्वितीया $ तृतीया/2= प्रथम मास
(24 घण्टा) $ 2 घण्टा $ 12 घण्टा = (60 घण्टा)
3ध्2 $ 4 $ 5
तृतीया/2$ चतुर्थी $ पळचमी = द्वितीय मास
12 घण्टा$ 24 घण्टा $ 24 घण्टा= (60 घण्टा)
6 $ 7 $ 8ध्2
षष्ठी $ सप्तमी $ अष्टमी/2= तृतीय मास
24 घण्टा$ 24 घण्टा$ 12 घण्टा= (60 घण्टा)
8ध्2 $ 9 $ 10
अष्टमी/2$ नवमी $ दशमी = चतुर्थ मास
12 घण्टा$ 24 घण्टा$ 24 घण्टा= (60 घण्टा)
11 $ 12 $ 13ध्2
एकादशी$ द्वादशी $ त्रयोदशी/2 = पंचम मास
24 घण्टा 24 घण्टा 12 घण्टा = (60 घण्टा)
13ध्2 $ 14 $ 15
त्रयोदशी/2 $ चतुर्दशी $ पूर्णिमा = षष्ठ मास
12 घण्टा $ 24 घण्टा$ 24 घण्टा = (60 घण्टा)

पौषकृष्ण पक्ष (माघकृष्ण):-

16 $ 17 $ 18ध्2
प्रतिपदा $ द्वितीया $ तृतीया/2= सप्तम मास
(24 घण्टा) $ 2 घण्टा $ 12 घण्टा = (60 घण्टा)
18ध्2 $ 19 $ 20
तृतीया/2$ चतुर्थी $ पळचमी = अष्टम मास
12 घण्टा $ 24 घण्टा $ 24 घण्टा = (60 घण्टा)
21 $ 22 $ 23ध्2

षष्ठी $ सप्तमी $ अष्टमी/2= नवम मास

24 घण्टा $ 24 घण्टा $ 12 घण्टा = (60 घण्टा)

23ध्2 $ 24 $ 25

अष्टमी/2$ नवमी $ दशमी = दशम मास

12 घण्टा $ 24 घण्टा $ 24 घण्टा = (60 घण्टा)

26 $ 27 $ 28ध्2

एकादशी$ द्वादशी $ त्रयोदशी/2 = एकादश मास (ग्यारहवां)

24 घण्टा $ 24 घण्टा $ 12 घण्टा =

28ध्2 $ 29 $ 30

त्रयोदशी/2 $ चतुर्दशी $ अमावस्या = द्वादश मास (बारहवां)

12 घण्टा $ 24 घण्टा $ 24 घण्टा = (60 घण्टा)

उपरोक्त प्रकार से प्रत्येक मास ढ़ाई (2 1ध्2) दिन या 60 घण्टा या 150 घटी के तुल्य सिद्ध होता है। चूँकि प्रत्येक मास 30 तिथियों का होता है, अतः 2 1ध्2 दिन या 60 घण्टे को 30 भागों में विभक्त करने पर 60ध्30 = 2 घण्टा एक-एक दिन का मान हुआ।

प्राप्त एक दिन का जो मान 2 घण्टा है उसमें प्रथम 1 घण्टा दिन का सूचक तथा दूसरा घण्टा रात्रि का सूचक होता है। अतः प्रथम घण्टे की वायु दिन की वृष्टि का व द्वितीय घण्टे की वायु रात्रि की वृष्टि का सूचक होती है। एक दण्ड में पताका लगाकर दिन-रात प्रयत्न पूर्वक पौष मास में ही बाकी 12 महीनों की वृष्टि का ज्ञान वायु परीक्षण के द्वारा किया जाता है। यथा पाराशर का वचन है-

दत्वा दण्डे पताकां तु वातस्यानुक्रमेण च।
विज्ञेया मासिकी वृष्टिः कृत्वा यत्नमहर्निशम्।। (कृषि पारा., श्लोक-26)

2.6 मासानुसार वृष्टि का ज्ञान

माघवृष्टि ज्ञान

यदि माघ मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी को वृष्टि हो या मेघ दिखाई पड़े तो उस वर्ष अच्छी वृष्टि होती है तथा सभी प्रकार के अन्न प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं। यथा-

माघस्य सितसप्तम्यां वृष्टिर्वा मेघदर्शनम्।
तदा संवत्सरो धन्यः सर्वशस्यफलप्रदः।। (कृषि पारा., श्लोक-29)

इसी प्रकार "सप्तम्यां स्वाति योगे यदि पतति जलं माघपक्षेऽन्धकारे" इस वाक्य के अनुसार माघ मास के कृष्ण सप्तमी को स्वाती नक्षत्र का योग होने पर यदि जल गिरे, प्रचण्ड वायु व जलपूर्ण मेघ गर्जन हो तथा आकाश विद्युत से क्षुब्ध हो रहा हो, सूर्य-चन्द्र न दिखाई दे रहे हों तो मेघ पृथ्वी पर आकर कार्तिक मास के अन्त तक वर्षा करते हैं।

फाल्गुनवृष्टि ज्ञान

यदि-

पञ्चम्यादिषु पञ्चसु कुम्भेऽर्के यदि भवति रोहिणीयोगः।
अधमतमाधममध्यममहदति महाम्भसां निपातः।।

अर्थात् सूर्य के कुम्भ राशि में जाने पर यदि पञ्चम्यादि पाँच तिथियों में रोहिणी नक्षत्र का योग हो तो क्रमशः अत्यल्प, स्वल्प, औसत, अधिक और बहुत अधिक वर्षा होती है। साथ ही फाल्गुन मास में मेघगर्भ धारण होने पर-

फाल्गुनशुक्लसमुत्था भाद्रपदस्यासिते विनिर्देशः।
तस्यैव कृष्णपक्षोöवास्तु ये तेऽश्वयुक्शुक्ले।। (बृ. सं., पृ.- 156)

यदि फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में मेघों का गर्भधारण हो तो भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष में व फाल्गुन कृष्णपक्ष में गर्भधारण हो तो आश्विन शुक्लपक्ष में वृष्टि होती है।

चैत्रवृष्टि ज्ञान

यदि चैत्र मास की प्रतिपदा तिथि को रविवार हो तो उस वर्ष सामान्य वर्षा होती है। यदि सोमवार हो तो घनघोर वर्षा, मंगलवार हो तो अल्पवृष्टि, बुध, गुरु व शुक्रवार होने पर सामान्यवृष्टि तथा शनिवार होने पर अत्यल्प वृष्टि होती है। ऐसा आचार्य पाराशर ने कहा है। इसी प्रकार चैत्र मास में मूल नक्षत्र के आदि व भरणी नक्षत्र के अन्त भाग में यदि अहर्निश (रात-दिन) हवा प्रवाहमान रहे तो आर्द्रा आदि नक्षत्रों में अवश्य ही वर्षा होती है। यथा-

मूलस्यादौ यमस्यान्ते चैत्रे वायुरहर्निशम्।
भाद्रोदीनि च ऋक्षाणि वृष्टिहेतोर्विशोधयेत्।।

चैत्रवृष्टि ज्ञान

वैशाख मास में वृष्टि ज्ञान का एक अनोखा प्रयोग आचार्य पाराशर द्वारा बतलाया गया है वैशाख मास की शुक्ल प्रतिपदा को "ऊँ सिद्धि" इस मन्त्र से 200 बार अभिमन्त्रित एक दण्ड को चिह्न लगाकर प्रवाहमान नदी में खड़ा कर दें और प्रातःकाल उठने के पश्चात् भविष्य के जल का परिमाण जानने के लिए सहसा उस चिह्न को देखें तथा समान, अधिक या कम हुआ देखकर उसके अनुसार वृष्टि का निश्चय करना चाहिए। यथा-

प्रवाहयुतनद्यां तु दण्डं न्यस्य जले निशि।
वैशाखशुक्लप्रतिपत्तिद्यौ वृष्टिं निरूपयेत्।।

ज्येष्ठ वृष्टि ज्ञान

चित्रास्वतीविशाखासु ज्यैष्ठे मासि निरभ्रता।
तास्वेव श्रावणे मासि यदि वर्षति वासवः।।
तदा संवत्सरो धन्यो बहुशस्यफलप्रदः।

ज्येष्ठ मास में यदि चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्रों में आकाश में बादल न हो तथा उन्हीं नक्षत्रों के समय यदि श्रावण माह में वर्षा हो जाए तो उस वर्ष उत्तम वर्षा से अनाज की अधिक

उत्पत्ति होती है।

ज्येष्ठ माह के आरम्भ और ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में आर्द्रा इत्यादि दस नक्षत्रों में (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पू. फाल्गुनी, उ. फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती) वृष्टि होने पर जलयुक्त स्थान निर्जल के सदृश तथा निर्जल स्थान जलयुक्त के समान हो जाता है।

ज्येष्ठौ सितपक्षे च आर्द्रादिदशऋक्षके।
सजला निर्जला यान्ति निर्जलाः सजला इव (कृषि पारा., पृ.- 31)

आषाढ़वृष्टि ज्ञान

आषाढ़्यौ पौर्णमास्यां सुरपति ककुभो वातिः वातः सुवृष्टिः।
शस्यध्वंसं प्रकुर्याद्दहन दिशिगतो मन्दवृष्टिर्यमेन।।

नैऋत्यां शस्यहनिर्वरुणदिशि जलं वायुना वायुकोपः।
कौवेर्यां शस्यपूर्णा प्रथयति नियतं मेदिनीं शम्भुना च।।

अर्थात् आषाढ़ मास की पूर्णिमा को पूर्व दिशा की वायु हो तो वृष्टि होती है। अग्निकोण की वायु हो तो अत्यल्प वृष्टि, दक्षिण दिशा की वायु हो तो मन्दवृष्टि नैऋत्य कोण की वायु से भी अल्पवृष्टि, पश्चिम दिशा की वायु हो तो अच्छी वृष्टि, वायव्य कोण की वायु हो तो हवा (आँधी) का प्रकोप तथा उत्तर दिशा तथा ईशान कोण की वायु हो तो जल वृष्टि होती है।

आषाढ़ माह के शुक्लपक्ष नवमी को यदि वर्षा हो तो उस वर्ष यथा समय वर्षा होती है। साथ ही आषाढ़ शुक्ल नवमी को पूर्व दिशा निर्मल हो, तीव्र, किरणों से युक्त सूर्य अपने स्वाभाविक स्वरूप में हो तथा सूर्यास्त के समय जब मेघों से आवृत्त हो तो सूर्य के तुला राशि में अन्त तक मेघ बरसते रहते हैं। यथा-

आषाढ़स्य सिते पक्षे नवम्यां यदि वर्तति।
वर्षत्येव तदा देवस्तत्रावृष्टौ कुतो जलम्।।

शुक्लाषाढ़ नवम्यामुदयगिरितही....... इत्यादि।।

श्रावणवृष्टि ज्ञान

यदि श्रावण के महीने में रोहिणी नक्षत्र में मेघ जल की वर्षा करें तो यह वृष्टि देवोत्थान तक (कार्तिक शुक्ल एकादशी) होती रहती है। यथा-

रोहिण्यां श्रावणे मासि यदि वर्षति वासवः।
तथा वृष्टिर्भवेत्तावद् यावन्नोत्तिष्ठते हरिः।।

इसी प्रकार श्रावण के महीने में यदि रोहिणी नक्षत्र में वृष्टि न हो तो कृषि कार्य व्यर्थ हो जाता है अर्थात् यह अत्यल्प वर्षा का सूचक है, यथा-

श्रावणे मासि रोहिण्यां न भवेद् वर्षणं यदि।
विफलारम्भसकलेशास्तदा स्युः कृषि वृत्तयः।।

2.7 मेघों का गर्भ-धारण

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मेघों के गर्भ धारण (जल से परिपूर्ण होना) के अनुसार ही उस वर्ष वृष्टि की स्थिति का विवेचन अपने ग्रन्थों में किया है। अतएव गर्भधारण के लक्षण व समय का सम्यक् ज्ञान तथा स्थितियों के आधार पर गर्भ की स्थिति का विचार अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। गर्भधारण के समय का विवेचन करते हुए वराहमिहिर ने लिखा है-

ज्यैष्ठसितेऽष्टम्याधश्चत्वारो वायुधारणो दिवसाः।
मृदुशुभपवनाः शरन्ताः स्निग्धाघनस्थगितगगनाश्च।। (वृ. सं.. पृ.- 162)

अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी से चार दिन तक गर्भधारण के दिन होते हैं। इन दिनों में सुखस्पर्श, शुभ (उत्तर, ईशान या पूर्वदिशा में उत्पन्न) वायु, निर्मल मेघों से युक्त आकाश शुभ होता है। इसी बात को आचार्य वशिष्ठ भी कहते हैं कि यदि विद्युत, जलकण, धूलि से युक्त वायु, मेघाच्छन्न सूर्य-चन्द्र और उत्तर, ईशान कोण या पूर्व दिशा की विद्युत् युक्त वायु गर्भधारण के दिनों में हो तो उत्तम वृष्टि समझनी चाहिए। यथा-

सविद्युतः सपृषतः समाशूत्करमारुताः।
सार्कचन्द्र परिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः।। (वशिष्ठ)

मेघों के गर्भधारण का समय कुछ अन्य आचार्यों के मतानुसार इससे भिन्न है। जैसे किसी आचार्य का मत है कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं। यथा -

केचिद्वदतित कार्त्तिकशुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसाः स्युः।

परन्तु गर्ग आदि आचार्यों के मतानुसार मार्गशीर्षशुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित हो उस समय से गर्भों का लक्षण जानना चाहिए। यथा-

मार्गशिरः सितपक्षप्रतिपत्यभृति क्षपाकरेऽषाढ़ाम्।
पूर्वा वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम्।।

मेघों के गर्भधारण के उपरान्त उनका प्रसव (वर्षण) कब होगा यह जानना आवश्यक है, क्योंकि हमें वृष्टि कब होगी यही समाज को बताना होगा। इस विषय में आचार्य वाराहमिहिर ने कहा है-

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत्स चन्द्रवशात्।

पनवते दिनशते तथैव प्रसवमायाति।। (बृ. सं., पृ.- 155)

अर्थात् चन्द्रमा के जिस नक्षत्र पर स्थित होने से गर्भ-धारण होता, चन्द्र के वश 195वें दिन उसका प्रसव होता है।

ध्यानाकर्षणः- यदि चान्द्रमान से 195 दिन गिनेंगे तो उस दिन वह नक्षत्र प्राप्त नहीं होगा, अतएव सावन मान से 195 दिन लेना चाहिए जिससे 195वें दिन ठीक वही नक्षत्र प्राप्त होगा।

2.8 नक्षत्रों के द्वारा वृष्टि ज्ञान

विभिन्न नक्षत्रों के अनुसार गर्भधारण या वृष्टि का आरम्भ भी वृष्टि की स्थिति का निर्धारण

संहिता ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यथा-

भद्रपदाद्वयविश्वाम्बुदेवपैतामहेष्वथक्षेषु।
सर्वेष्वृतुशु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति।।

अर्थात् सभी ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, रोहिणी इन पाँचों नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ (गर्भधारण) वृष्टिकाल में अत्यधिक वर्षा करता है।

एवमेव शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती या मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक वर्षा करते हैं। परन्तु इन पाँच नक्षत्रों में उत्पन्न गर्भ यदि त्रिविध उत्पातों (दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम) से ग्रसित हों तो उतने दिन तक वर्षा नहीं होती। यथा-

शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघा संयुतः शुभो गर्भः।
पुष्णाति बहून् दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैः।।

अर्थात् यदि उक्त पाँच नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में मार्गशीर्ष में गर्भ की वृद्धि हो तो प्रसव समय से 8 दिन, पौष में 6 दिन, माघ में 16 दिन, फाल्गुन में 20 दिन, चैत्र में 20 दिन और वैशाख में 3 दिन वृष्टि होती है। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से योग नक्षत्रानुसार संहिता ग्रन्थों में वर्णित हैं।

2.9 सद्योवृष्टि

ज्योतिष शास्त्र के द्वारा विभिन्न विधियों से वृष्टि का ज्ञान करने का मार्ग आचार्यों ने बतलाया है। किन्तु फिर भी हम पाते हैं कि निर्धारित अवधि के पूर्व या पश्चात् वृष्टि हो जाती है। इसका ध्यान हमारे मनीषियों को भी था। इसीलिए उन्होंने इसका ज्ञान करने के लिए प्रसवकाल (वृष्टिकाल) के आसन्न ग्रहस्थिति का अवलोकन सद्योवृष्टि लक्षण के नियमानुसार करने का निर्देश दिया है। सद्योवृष्टि में उन तथ्यों या कारणों का विचार किया जाता है जिनका प्रभाव तत्काल पड़ता है। यथा-

आसन्नमर्कं शीतांशो परिवेश गतोत्तरा।
विद्युत्-प्रपूर्ण-मण्डूकस्त्वानावृष्टिर्भवेत्तदा।।

पुरः पृष्ठतो भानोर्ग्रहा यदि समीपगाः।
तदा वृष्टिं प्रत्कुर्वन्ति न चेत् प्रति लोमगाः।।

इस प्रकार सूर्य-चन्द्र मण्डलों पर परिवेषादि तथा इनकी गतियों एवं विशिष्ट स्थितियों के कारण प्रकृति में परिवर्तन होता है, जिसका प्रभाव वायु और मेघों पर पड़ता है जो वृष्टि के मुख्य घटक हैं।

संहिता ग्रन्थों में पशु-पक्षी-मनुष्य की चेष्टाओं, सूर्य-चन्द्र की गति व स्पर्श, ग्रहादिकों के योग आदि नाना विधियों से सद्योवृष्टि का ज्ञान करना बतलाया गया है। जैसे- यदि बिना कारण चिंटियाँ अपने अण्डों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाएं, सर्पों का मैथुन हो, सर्प वृक्ष पर चढ़े या गौ बिना कारण उछले तो यह शीघ्र वर्षा का संकेत है। यथा-

विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसङ्क्रान्तिरहित्यवायः।
द्रुमावरोहश्च भुजंबानां वृष्टेर्निमित्तानि गवांप्लुतं च॥

यदि रात में मेघ का गर्जन हो, दिन में रक्त के समान दण्डाकार बिजली दिखे तथा पूर्व दिशा की शीतल वायु चले तो शीघ्र वर्षा होती है-

स्तनितं निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभा यदिदण्डवत् स्थिताः।
पवनः पुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदाऽऽगमो भवेत्॥

ग्रहों की स्थिति, समागम आदि के द्वारा भी सद्योवृष्टि का ज्ञान प्राप्त होता है जैसे यदि वर्षाकाल में शुक्र सप्तम राशि में स्थित होकर चन्द्रमा शुभग्रह से देखा जाता हो अथवा शनि से नवम या पम में स्थित होकर शुभग्रह से देखा जाता हो तो वर्षा होती है। इसी प्रकार यदि सूर्य से मन्दगति ग्रह आगे और शीघ्रगति ग्रह पीछे हो तो पृथ्वी पर बहुत वर्षा होती है। यथा-

अग्रहः पृष्ठतो वाऽपि ग्रहाः सूर्यावलम्बिनः।
यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव॥

इसी प्रकार सद्योवृष्टि को जानने के लिए विभिन्न योग तथा पशु-पक्षियों की चेष्टाओं का वर्णन संहिता ग्रन्थों में प्राप्त होता है जिनका आश्रय लेकर वृष्टि का पूर्वानुमान अधिक सटीकता के साथ किया जा सकता है।

2.10 सारांश

जैसा कि हमें विदित है कि हमार देश कृषि प्रधान है तथा सम्पूर्ण प्राणिमात्र के जीवन का आधार अन्न व जल है। अन्न की उपज भी जल के बिना सम्भव नहीं है तथा कृषिकार्य हेतु जल प्रबन्धन के अनेक साधन ट्यूबवेल, पम्पिंग सेट, नहर, इत्यादि के उपलब्ध रहते हुए भी वर्षा का जल अत्यन्त आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखते हुए हमारी सरकारों व वैज्ञानिकों ने मौषम के पूर्वानुमान हेतु अनेक उपग्रहों का प्रक्षेपण किया है, किन्तु फिर भी हम यदि तुलनात्मक रूप से विश्लेषण करें तो पाएंगे कि प्राचीन ज्योतिष शास्त्र के सूत्रों के आधार पर की गई वृष्टि का पूर्वानुमान आधुनिक विज्ञान के पूर्वानुमान से किसी भी रूप में कमतर नहीं है।

वृष्टि का पूर्वानुमान करने के लिए हमें त्रिविध उत्पातों (दिव्य, अन्तरिक्ष, भौम), पाँचों निमित्तों (वायु, जल, विद्युत्, मेघ का शब्द और मेघों से युत गर्भ), दिशाओं के वश उल्कापात, विद्युत् दिग्दाह, आकाश में शब्द, भूकम्प आदि, वायु का सम्यक् परीक्षण (पताका, स्थापना पूर्वक), वायु के प्रमुख भेद (पावक, स्थापक और ज्ञापक) का ज्ञान, जलद् मेघों (संवर्त्तक, आवर्त्तक, पुष्कर, द्रोण) का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके उपरान्त सद्योवृष्टि के लक्षणों का ज्ञान व उनका सतत परीक्षण हमारे वृष्टि के पूर्वानुमान को त्रुटिरहित करने में सहायक होगा।

इस इकाई में वृष्टि विवेचन करते हुए यथा सम्भव प्रमुख तत्त्वों को समाहित करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से हम ज्योतिष शास्त्रानुसार वृष्टि के पूर्वानुमान में प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु सम्यक् रूप से वृष्टि का ज्ञान करने के लिए संहिता ग्रन्थों का अध्ययन और ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान हमें करना होगा।

2.11 शब्दावली

मेघगर्भ = मेघों और वाष्पजल का चन्द्र रश्मियों से (ठंडा होकर) संघनन होना।

पनिमित्त = वायु, जल, विद्युत्, मेघों का शब्द और मेघगर्भ ये पाँच हेतु जिनका वृष्टि पर प्रभाव होता है और पूर्वानुमान में सहायक होते हैं।

सद्योवृष्टि = तत्काल वर्षा का ज्ञान।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

बृहत्संहिता,
कृषि पाराशर,
वायुपुराण,
आर्षवर्षा, वायुविज्ञान।

2.13 बोधप्रश्न

सद्योवृष्टि से आप क्या समझते हैं?
मेघों के गर्भधारण का लक्षण क्या है?
पौष्यवृष्टि विज्ञान को स्पष्ट करें?
मेघानयन की पद्धति क्या है?
राजा (वर्षेश) व मन्त्री का आनयन कैसे करेंगे?
जलाढ़क से आप क्या समझते हैं?

इकाई 3 वृक्षायुर्वेद

इकाई की संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 वृक्षायुर्वेद का सामान्य परिचय

- 3.3.1 वृक्ष तथा बगीचा लगाने के लिए भूमिचयन
- 3.3.2 वृक्षारोपण का समय
- 3.3.3 वृक्षों के लगानें का क्रम
- 3.3.4 वृक्षों में रोगोत्पत्ति के कारण तथा आयुर्वेदिक उपाय

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.7 बोधप्रश्न

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- आप बता सकेंगे कि वृक्षायुर्वेद किसे कहते है।
- समझा सकेंगे कि वृक्षारोपण कब करना चाहिए।
- वृक्षों को रोपने के क्रम को जान सकेंगे
- वृक्षों में होने वाले रोगों को जान सकेंगे एवं उन रोगों का निदान भी कर पाएंगे।

3.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई सप्तम पाठ्यक्रम संहिता ज्योतिष के चतुर्थ खण्ड दकार्गलादि विचार की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – वृक्षायुर्वेद। इससे पूर्व आप सभी ने वृष्टि विवेचन से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत वृक्षायुर्वेद का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं। वृक्षायुर्वेद से तात्पर्य है- वृक्षों का रोपण, उन वृक्षों में होने वाले रोगों का आयुर्वेदिक निदान। हम सब को विदित है कि वृक्ष जीवन के कितने आवश्यक हैं। वृक्ष रोपण के लिए सुष्ठु भूमि का चयन, किस वृक्ष को कब और किस स्थान (दिशा) पर रोपित करें, उनमें उत्पन्न होने वाले रोगों का आयुर्वेदिक निदान अत्यन्त आवश्यक बिन्दु है।

अत: आइये संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत वृक्षायुर्वेद विभिन्न स्वरूपों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते हैं।

3.3 वृक्षायुर्वेद का सामान्य परिचय

ज्योतिष शास्त्र एवं आयुर्वेद एक दूसरे का पूरक शास्त्र है। ज्योतिष शास्त्र में वृक्षायुर्वेद का विवेचन बहुत ही विस्तार पूर्वक किया गया है। वृक्षायुर्वेद का वर्णन समस्त संहिताचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थों में बहुत सुन्दर रूप से प्रतिपादित किये है। बृहत्-संहिता में वृक्षायुर्वेद अध्याय में वृक्षों के रोपण के लिए अच्छी भूमि तथा कौन से वृक्ष को कहाँ और कब लगाना चाहिए और वृक्षों के आंतरिक एवं बाह्य रोगों के पहचान और उनके निदान का वर्णन मिलता है। बृहत्-संहिता में वृक्षों के लगाने के बारे में बताते हुए कहते है कि-

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः।
यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत्॥

यदि वापी, कूप, तालाब आदि जलाशयों के प्रान्त वृक्षों के छाया से रहित हो तो सुन्दर नही लगते है अर्थात् जलाशयों के किनारों पर बहुत सारे वृक्ष लगाने चाहिए।

3.3.1 वृक्ष तथा वाटिका लगाने के लिए भूमिचयन

आइए वृक्षारोपण के लिए प्रशस्त भूमि का विचार किया जाए क्योंकि इसमें कोई संशय नहीं है कि अगर भूमि वृक्षारोपण के लिए अच्छी होगी तो वृक्ष भी अच्छा होगा। ज्योतिष शास्त्र में भूमि तीन प्रकार की बतलाई गई है- १. अनूप, २. जाङ्गल और ३. सामान्य (मिश्र)। अब यह जान लेते हैं कि यह जो भेद हुआ है यह किस आधार पर हुआ है वर्णन मिलता है कि अनूप भूमि वाला देश अधिक जलवाला होता है अर्थात् अनूप भूमि वाले देश में अधिक वर्षा होती है। दूसरी भूमि अर्थात् जाङ्गल इस भूमि के बारे में वर्णन प्राप्त होता है कि जाङ्गल भूमि वाला देश अल्प जलवाला होता है। अर्थात् जाङ्गल भूमि वाले देश में जरूरत से कम वर्षा होती है। तीसरी भूमि सामान्य या कहे तो मिश्र भूमि इस भूमि के बारे में वर्णन मिलता है कि सामान्य (मिश्र) भूमि वाले देश में शीत, उष्ण और हवा की समानता रहती है। अर्थात् सामान्य (मिश्र) भूमि वाले देश में जरूरत भर की ही वर्षा होती है। ना अनूप और ना ही जाङ्गल भूमि वृक्षारोपण के लिए उचित हैं बल्कि सामान्य (मिश्र) भूमि सभी प्रकार के वृक्षों, सस्य के लिए उचित कही जाती है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए। वर्ण और रस के आधार पर भूमि के छह भेद और भी हो सकते हैं। अब आइए भूमि के इन छह भेदों को भी जान लेते हैं। रंग अर्थात् वर्ण के अनुसार भूमि क्रमशः १. काली, २. पाण्डु, ३. श्यामला, ४. लोहित, ५. श्वेत और ६. पीली होती है। इसी प्रकार स्वाद अर्थात् रस के अनुसार भी इसके निम्न छह भेद होते हैं- १. मधुर, २. अम्लीय, ३. लवणीय, ४. तिक्त, ५. कटु और ६. कषाय। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब हम यह भी जान लेगें इन्द्रनील के समान, सुआ के पंखों की जैसी कोमल, क्रौञ्च की भाँति सफेद, कुन्द और कुमुद जैसी आभा वाली अथवा चन्द्रमा की जैसी आभा से युक्त, पीला या तप्त स्वर्ण की जैसी सुर्ख व चम्पक जैसी मिट्टी वृक्षारोपण के लिए प्रशस्त कही गई है। और समतल, जल वाली, हरियाली से युक्त रहने वाली और तरु व तृण आदि अर्थात् घास से युक्त भूमि भी सभी दृष्टियों से वृक्षारोपण के लिए प्रशस्त कही गई है। बृहत्संहिता के अनुसार वृक्षारोपण के लिए प्रशस्त भूमि तथा वृक्षारोपण के लिए भूमि को कैसे तैयार करना चाहिए इसके बारे में यह वर्णन आता है कि-

मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत्।
पुष्पितांस्तांश्च मृद्नीयात् कर्मैतत् प्रथमं भुवः॥

सभी वृक्षों के लिए कोमल भूमि अच्छी होती है। आपको जिस भी भूमि में वृक्ष या बागीचा लगाना हो उस भूमि में सबसे पहले तिल बोना चाहिए और जब तिल मे फूल आ जाए तब उस तिल के पौधे को उसी भूमि में मर्दन कर देना चाहिए। यह भूमि का प्रथम कर्म है। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए यह भी जान लेते हैं कि गृह (आवास) के समीप कौन-कौन से वृक्ष लगाना शुभ होता है और कौन सा अशुभ तथा किस वृक्ष को गृह से किस दिशा में लगाना चाहिए। बृहत्संहिता में वर्णन आता है कि-

अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः।
मङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा॥

पहले बगीचे या घर के समीप शुभ फल देने वाले निम्ब, अशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियङ्गु (ककुनी - कौनी) इन वृक्षों को लगाना शुभ होता है। वास्तु राजबल्लभ के अनुसार दूध वाले वृक्ष अर्थात् जिस वृक्ष को काटने पर उससे दूध निकले, कांटे वाले वृक्ष ग्रह के समीप ना लगाये चाहे वे वृक्ष भले ही फल फूल वाले क्यों ना हो, गृह के समीप उनका रोपण करना शुभ नहीं होता है। तथा यदि किसी वृक्ष की छाया एक पहर के बाद घर के ऊपर पड़े तो वह भी वृक्ष शुभ नहीं होता है। दूध वाले वृक्ष से धन का नाश, कांटे वाले वृक्ष से शत्रु का भय तथा फल वाले वृक्ष से सन्तति नाश होता है। सुवर्ण वर्ण वाले फूल युक्त वृक्ष भी घर के समीप शुभ नहीं होते है। यदि बेल, शमी, अशोक, मौलसिरी, पुन्नाग और चम्पक वृक्ष घर के समीप लगे हुए हो तो उन्हें कभी भी नहीं काटना चाहिए। चम्पा, गुलाब, केला, जाती, केवड़ा यह सब शुभ वृक्ष गृह के समीप लगाना चाहिए। द्राक्षा (मुनक्का अंगूर) की बेल का मण्डप, चन्दन वृक्ष, पीप्पली की बेल, अनार का वृक्ष घर के समीप लगाना शुभ होता है। अब हम बृहत् संहिता के अनुसार यह जान लेते हैं कि कौन सा वृक्ष घर के किस दिशा में लगाना शुभ है और कौन सा वृक्ष अशुभ है। पाकड़ का वृक्ष दक्षिण दिशा में, वट का वृक्ष पश्चिम दिशा में, गूलर का वृक्ष उत्तर दिशा में और पीपल का वृक्ष पूर्व दिशा में नहीं लगाना चाहिए यह वृक्ष उक्त दिशाओं में अशुभ होते हैं। घर से उत्तर दिशा में पाकड़ का वृक्ष, पूर्व दिशा में वट का वृक्ष, दक्षिण दिशा में गूलर का वृक्ष और पश्चिम दिशा में पीपल का वृक्ष लगाना चाहिए क्योंकि ये सब वृक्ष उक्त दिशाओं में शुभ होते है। अर्थात् जो वृक्ष पहले जिस दिशा में अशुभ कहे गए हैं, वे ठीक उसके विपरीत दिशा में शुभ होते हैं। अब वाटिका लगाने के महत्व को जान लेते हैं जो व्यक्ति अपने घर के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण अथवा ईशान कोण में वाटिका तालाब अथवा कुआ बनवाता है वह व्यक्ति सदा गायत्री पुरश्चरण करने के समान फल पाता है और सदैव दान देता है तथा हमेशा यज्ञ करता है ऐसा समझा जा सकता है। कहा जाता है कि वृक्षारोपण से भी अधिक फल लताओं के लगाने से मिलता है। बगीचे में दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण के बीच में जामुन का वृक्ष, पूर्व और ईशान कोण के बीच में कदम्ब का वृक्ष, पनस (कटहल) का वृक्ष और आम का वृक्ष लगाये, बगीचे के बाहर पूर्व दिशा में बाँस, उत्तर दिशा में शमी का वृक्ष, पश्चिम दिशा में खैर का वृक्ष, दक्षिण दिशा में मौलसिरी का रोपण करना शुभ होता है। पहला बगीचा आम का, दूसरा पीपल का, तीसरा बरगद का, चौथा पाकड़ का, पाँचवाँ नीम का, छठा जामुन का, सातवाँ इमली का होता है। इनमें आम का बगीचा सर्वश्रेष्ठ होता है; जो व्यक्ति अग्निहोत्र नहीं करता, जिसके कोई अपने पुत्र नहीं है, उसको आम का बगीचा लगाना चाहिये; क्योंकि बगीचे को लगाने वाला उसी प्रकार स्वर्ग को प्राप्त होता है, जिस प्रकार पुत्र द्वारा किये गये श्राद्धादि कर्मों से; अतः उत्तम वृक्षों

को लगाकर परोपकार करना चाहिये। वराह मिहिर के अनुसार जो मनुष्य राजमार्ग (सड़क) के दोनों और सुन्दर वृक्षारोपण करता है वह मनुष्य चार युगों तक सर्व सूख सम्पन्न स्वर्ग में निवास करता है।

3.3.2 वृक्षारोपण का समय

ज्योतिषशास्त्र में वृक्षारोपण करने वाले व्यक्ति के लिए कहा जाता है कि जिस भी व्यक्ति को वृक्षारोपण की इच्छा हो उस व्यक्ति को सर्वप्रथम स्नानादि से पवित्र होकर विमल और साफ वस्त्रों को धारण करना चाहिए। कुल देवता या इष्ट देवता की पूजा करके गुरु तथा वृद्धजनों का आशीर्वाद लेकर। अपने निर्देशकों को ससम्मान सम्पत्ति भूमि आदि भेंट करनी चाहिए और भूमि देवी (वास्तु पुरुष) का अभिवादन करने के पश्चात ही कुछ भी जो कि स्वयं ही बुवाई करनी चाहिए तदोपरान्त परिजनों और अन्य जनों को बुवाई के कार्य में जुटाना चाहिए। बीजों को भूमि में डालने के बाद उस पर तृण (घास) को बिखेर देना चाहिए फिर दूध मिला पानी का छिड़काव उन बीजों के ऊपर करना चाहिए। जब वह बीज अंकुरित होने को हो तब उनकी पानी से सिंचाई आरम्भ करना चाहिए। इस दौरान अर्थात् सिंचाई के दौरान घास की परत को हटाकर मृदा को सूखने देना चाहिए। बृहद् दैवज्ञरञ्जनम् में लता गुल्मा आदि रोपण के लिए निम्न मंत्र दिया गया है-

ॐ वसुधेतिच सीतेति पुण्यदेति धरेति च।
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोयं बर्द्धतामिति॥

इस मंत्र के द्वारा वृक्षारोपण वाले इच्छुक व्यक्ति को भूमि का वंदना करना चाहिए। बृहत्-संहिता के अनुसार वृक्ष के कलमों के लगाने के बारे बताया है कि-

पनसाशोककदलीजम्बूलकुचदाडिमाः।
द्राक्षापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्तकाः॥

एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः।
मूलोच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः परं ततः॥

कटहल, अशोक, केला, जामुन, बड़हर, दाड़िम, दाख, पालीवत, बिजौरा, अति मुक्तक- इन वृक्षों की शाखाओं को लेकर गोबर से लीप कर कटे हुए विजातीय वृक्ष की मूल शाखा पर लगाना चाहिए। यही कलम लगाने का प्रकार है। बृहत्-संहिता के अनुसार कौन से वृक्ष के कलम को कब लगाना चाहिए इस विषय में वर्णन आता है कि-

अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान् हिमागमे।
वर्षागमे च सुस्कन्धान् यथादिक्स्थान् प्ररोपयेत्॥

अजातशाखा अर्थात् कलमी से भिन्न वृक्षों को शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) में लगाना चाहिए। कलमी वृक्षों को हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष पौष) में लगाना शुभ होता है। और लम्बी लम्बी शाखा वाले वृक्षों को वर्षा ऋतु (श्रावण भाद्रपद) में लगाना शुभ माना गया है। आइए अब वृक्षारोपण के मुहूर्त्तों को जान लेते है प्रतिपदा आदि तिथियों में शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि, पूर्णिमा, पञ्चमी तथा त्रयोदशी तिथियों को वृक्षारोपण शुभ माना गया है। वार (दिन) की बात करें तो सोमवार, गुरुवार, बुधवार और शुक्रवार इन दिनों में वृक्षारोपण करना शुभ माना गया है।

वृक्षारोपण के लिए शुभ नक्षत्रों के बारे में बृहत् संहिता में वर्णन आता है कि-

ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः।
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि॥

ध्रुव संज्ञक नक्षत्र अर्थात् तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद), रोहिणी, मृदु संज्ञक नक्षत्र अर्थात् मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा तथा मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त इन नक्षत्रों में दिव्य दृष्टि वाले मुनियों ने वृक्षों का रोपण करने को उत्तम कहा है। बृहद् वास्तुमाला में वृक्षों के रोपण के लिए शुभ नक्षत्रों एवं ग्रहचार का वर्णन मिलाता है। हस्त, पुष्य, अश्विनी, तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद), रोहिणी, विशाखा, मृगशिरा, मूल शतभिषा नक्षत्रों में तथा गुरु केंद्र में हो, शुक्र उत्तम स्थान में हो, चन्द्रमा जलचर राशि में अथवा जलचर राशियों के लग्न में हो, चतुर्थ स्थान में शुभ ग्रहों का योग तथा दृष्टि, शुभ वार और शुभ लग्न में लता, गुल्म, वृक्ष आदि लगाना शुभ माना जाता है। वृक्षों के रोपण पर बृहस्पति का मत है कि सोमवार के दिन मूल नक्षत्र हो तो धनु लग्न में वृक्षों का रोपण करना शुभ माना जाता है। दूसरा योग है कि गुरुवार के दिन रेवती नक्षत्र हो और गुरु लग्न में हो तो बड़े वृक्षों को लगाना शुभ माना जाता है। अब वृक्षों के रोपण से पड़ने वाले कुछ शुभ और अशुभ फलों को भी जान लेते है जब आपको वृक्षों को रोपना हो तो उस समय सूर्य जिस नक्षत्र पर हो उससे चन्द्रमा जिस नक्षत्र पर हो उस तक गिनकर उसमे उस दिन का तिथि और वार के संख्या को जोड़ दे तथा उसमे ९ से भाग दे शेष जो भी अंक प्राप्त हो उस अंक के अनुसार फल मिलता है। यथा- १,३,५ संख्या शेष बचता है तो वह वृक्ष फल देने वाला होगा, २,४ संख्या शेष बचता है तो वह वृक्ष निष्फल अर्थात् फल नही देगा, ६,८ संख्या शेष बचता है तो वह वृक्ष लाभ देने वाला होता है तथा ७,९ संख्या शेष बचता है तो वह वृक्ष मृत्यु को देने वाला होता है।

3.3.3 वृक्षों के लगाने का क्रम

ज्योतिष शास्त्र तथा भारतीय कृषि शास्त्र में वृक्षों के लगाने के क्रम का बहुत ही विस्तारपूर्ण रूप से वर्णन किया गया आइए अब हम जान लेते है कि वृक्षों को किस क्रम से लगाना चाहिए। वृक्षारोपण तब सुन्दर दिखाई देगा। जब जिस भूमि पर वृक्षारोपण करना हो वह भूमि समतल होनी चाहिए और उस भूमि पर पहले तिल या काले माष अथवा उड़द की खेती की गई हो और उनके पुष्प आदि को वही उसी भूमि पर बिखेर कर ढेर किया गया हो। अर्थात् कहीं भी वृक्षारोपण से पहले वहां तिल अथवा उड़द की खेती की जाए और सम भूमि को उर्वरा बनाया जाए। यदि वृक्षों का रोपण अधिक दूर दूर किया जाए तो तेज हवाएं और आंधी आदि उन वृक्षों के लिए नुकसानदायक सिद्ध हो सकती हैं। इसी प्रकार यदि वृक्षों को अधिक पास पास भी लगाया जाए तो वह फलित नहीं होते। इसीलिए वृक्षों को निर्धारित दूरी पर ही लगाएं ताकि वे फलवान होते रहे। बृहत् संहिता में वृक्षों को लगाने के प्रमाण वर्णन आता है कि-

उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोडशान्तरम्।
स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम्॥

वृक्षारोपण के समय दो वृक्षों के मध्य में बीस हाथ की दूरी उत्तम माना गया है, दो वृक्षों के मध्य में सोलह (१६) हाथ की दूरी मध्यम तथा दो वृक्षों के मध्य में बारह (१२) हाथ की दूरी अधम माना गया है। वृक्षारोपण से पूर्व के कार्य पर बृहत्-संहिता में वर्णन आता है कि-

शुचिर्भूत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः।
रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते॥

वृक्षारोपण से पूर्व पवित्र होकर स्नान चन्दन आदि से वृक्ष की पूजा करके उसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर लगाना चाहिए। इस तरह लगाने से अपने पूर्व पत्तों से युक्त वृक्ष ही लग जाता है अर्थात् सूखता नहीं है। इसी क्रम में बृहत्-संहिता का मत यह भी है कि-

घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्ग क्षीरगोमयैः।
आमूलस्कन्धलिप्तानां संक्रामणविरोपणम्॥

घृत, खस, तिल, शहद, विडङ्ग (वायविडङ्ग), दूध, गोबर-इन सबों को पीसकर वृक्ष के मूल (जङ) से लेकर अग्रभाग तक लेप कर वृक्ष को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर लगाना चाहिये। अब जिस भूमि पर वृक्षारोपण करना है उस भूमि पर गड्डों को तैयार करने के मान को जान लेते है वृक्षों को रोपने से पहले गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढों की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई एक हाथ मान से रखनी चाहिए। जब गड्ढे सूख जाए तब गाय के गोबर की खाद, राख और अस्थि आदि से पूरित करना चाहिए। गड्डे में भस्मी (राख) डालकर उसे पुनः स्वभावस्थ करें अथवा उसे भर दे तथा वहाँ पर कुणप जल का छिड़काव करें। उस गड्डे को गुणवत्ता युक्त मिट्टी से भरना चाहिए। अब आप लोग कुणप जल के बारे में भी जान लीजिये इस जल का वर्णन आगे भी आएगा क्युकि वृक्षों के लिए दूध, पानी और कुणप जल आदि का प्रयोग अति आवश्यक है। विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट मल के साथ ही मज्जा, सूअर के मस्तिष्क, मांस और रक्त आदि को पानी में मिश्रित कर रखा जाए इसे ही कुणप जल (तरल खाद) कहा जाता है। कुणप जल बनाने का दूसरा तरीका है कि अश्व कि अस्थियां, मृत शुक, मछलियों का मांस, भेड़ बकरियों के सींग और उपला आदि को इकट्ठा कर लेना चाहिए फिर इन सभी को मिला कर पानी डालकर आग के ऊपर रख कर उबाल लेना चाहिए। और इस मिश्रण को एक साफ सुथरे पात्र में भरकर रख लें और इसमें पर्याप्त भूसी मिला दे। या फिर उक्त सामग्री को लोहे के किसी पात्र में भून लें और उसमें तिल की खली और शहद मिलाएं। और इसमें अच्छे गुणवत्ता वाले माष या उड़द और घृत मिला लेना चाहिए। अभी जितने भी सामग्री कही गयी है इनमे बिना किसी अनुपात या निश्चित क्रम के काम में ले लेना चाहिए क्योंकि इनका अनुपात या क्रम बता पाना कठिन है। तैयार किया गये जल को किसी भाण्डे में लेकर कही कोने में या फिर गर्म स्थान में रख देना चाहिए। कुणप जल के सन्दर्भ में यह हमेशा ज्ञातव्य है कि यह जल वृक्षों के लिए अत्यधिक पोषक होता है। ऐसा विचार पूर्व काल में ज्ञानी जनों के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

अब हम रोपण किये गये वृक्षों के संरक्षण एवं उनको सिञ्चित करने की प्रक्रिया को जान लेते हैं। छोटे और नए रोपे गए वृक्षों की वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि सात-सात दिन के अन्तराल पर उनको मत्स्य मांस, तिल आदि से सिद्ध किए शीतल जल से बार बार सिञ्चित करना चाहिए। छोटे एवं नए रोपे गए वृक्षों की पत्तियां जब तक प्रवाल की भांति ना दिखाई देने लगे तब तक उनको सूर्य के ताप से बराबर बचाए रखना चाहिए। जिन वृक्षों की जड़े मिट्टी में भली भांति जम गई हो उन वृक्षों को शीतकाल में एक दिन के अन्तराल पर पानी से सिञ्चित करना चाहिए। तथा बसन्त ऋतु में उन वृक्षों को नित्य शाम को पानी से सिञ्चित करना चाहिए। और ग्रीष्म काल हो तो उन वृक्षों को प्रतिदिन तीन बार पानी से सिञ्चित करना चाहिए। पावस कल और पतझड़ मे अथवा जब मिट्टी सूख गई हो तब चिकित्सकीय फलों के रस, मूत्र, वसा

एवं दूध आदि मिलाकर पानी से सिञ्चित करना चाहिए। वृक्षों से पर्याप्त मात्रा में फूल और फल प्राप्त करने के लिए पानी में सड़े हुए भी बीज, मांस, मल, व कुणप जल को मिलाकर वृक्षों को देना चाहिए। इससे सभी प्रकार के वृक्ष फूल और फल से लकदक हो जाते हैं। वृक्षों के आसपास उग आई व्यर्थ घास, खरपतवारों को उखाड़ देना चाहिए। इसके लिए कुदाल का प्रयोग कर वृक्षों के जड़ों के आसपास की खुदाई करनी चाहिए। हल्दी चूर्ण, विडङ्ग, खरगोश का मांस, अर्जुन वृक्ष के फूल और सफेद सरसों के बीज के मिश्रण को जलाकर उठने वाले धुएं की यदि वृक्ष को धूनी दी जाए तो परम संतोष देने वाले फूल और फलों की उत्पत्ति उन वृक्षों से होती है। इस धूप से पेड़ में व्याप्त समस्त दोष भी दूर हो जाते हैं और इसी कारण से यह वृक्ष अधिक फलवान होने लगते हैं। केले के पत्ते, सरसों और शफरी प्रजाति की मछलियों की धूनी दिए जाने पर वृक्ष कम समय में ही फूल और फल से लकदक हो जाते हैं। हरिण, कोल की वसा, शहद, सरसों, घृत तथा निचुल के वृक्ष की कोमल पत्तियों को जल में मिलाकर वृक्षों को सिञ्चित करने से वह वृक्ष बड़ी मात्रा में फूल और फल देने लगते हैं। घृत, विडङ्ग, छाछ और शहद आदि के मिश्रण से वृक्षों को परिधूपित किया जाए तो वह वृक्ष बहुत ही कम समय में फूलों एवं फलों से लद जाते हैं और दीर्घ काल तक फलवान बने रहते हैं। यह इस धूप का प्रभाव है। आम के वृक्ष को यदि अंकोल के पके हुए फलों के रस, घृत, शहद तथा सूअर की वसा के साथ पानी में मिलाकर वृक्ष को सिञ्चित किया जाए तो आम के वृक्ष से मीठे, बड़े और तृप्त करने वाले फल प्राप्त होंगे। नारियल कुल के वृक्ष जैसे कि ताड, खर्जूर और कतक आदि को यदि गाय के मांस, सूअर के मांस और शिशुमार नामक जीव के मांस में पानी मिलाकर यदि इन वृक्षों को सिञ्चित किया जाए और सफरी प्रजाति के मछली को तिल चूर्ण में मिलाकर उन वृक्षों को दिया जाए तो वह बहुत ही शीघ्र और अच्छे फल देने लग जाते हैं। जहां सूखा क्षेत्र (जाङ्गल) हो वहां पर छोटे और नए रोपे गए वृक्षों को प्रतिदिन सुबह और सन्ध्या को नियमित रूप से एक पखवाड़े तक सिञ्चना चाहिए जब तक की वहां की भूमि अर्थात् वृक्षों की जड़ों की भूमि पूरी रूप से तृप्त नहीं हो जाए। अधिक बारिश वाले क्षेत्र (अनूप प्रदेश) हो, वहां पर छोटे एवं नए लगाए गए वृक्षों को पाँच दिन में एक बार पानी से सिञ्चित करना चाहिए। साधारण क्षेत्र में वृक्षों को दस दिन तक सुबह शाम सीमित मात्रा में पानी दिया जाना उचित होता है। कर्कंधु या करौंदा, लकुच व बेर, धात्री या धोकड़ा एवं जामुन के वृक्षों को खरोंच कर घी, शहद और क्षार के मिश्रण का लेप किया जाए अथवा जौ के चुर्ण का लेप करें तथा तिल, मधु और यव की बारह दिन तक धूप उन वृक्षों को देकर तथा छाछ से सिञ्चाई की जाए तो उन वृक्षों में शीघ्र ही अच्छे फल लगने लगते हैं। बताए गए वृक्षों पर भारी मात्रा में यदि पानी हम शराब का नियमित छिड़काव किया जाए तो वे वृक्ष अमृत के समान एवं विशाल स्वादिष्ट फल देने लगते हैं। बिल्व तथा कपित्थ के वृक्षों को गुड, घी, दूध तथा शहद का घोल बनाकर सिञ्चित किया जाए तो वे वृक्ष बड़ी मात्रा में रसदार फल देने लगते हैं। कदली की जड़ों को यदि सडाए गए भूसे की राख और गाय के गोबर का खाद दिया जाए और कस सहित मांस के जल से सिञ्चित किया जाए तो वे वृक्ष वृत्ताकार फल उत्पन्न करने लगते हैं। इस प्रकार से इन विविध परीक्षित योगों, उत्तम, मध्यक्ष एवं निन्दित विधियों से समस्त शिशु वृक्ष, पूर्ण विकसित वृक्ष और फल वाले वृक्षों को कीट आदि व्याधियों से बचाने के लिए प्रयोग करना उचित माना गया है।

3.3.4 वृक्षों में रोगोत्पत्ति के कारण तथा आयुर्वेदिक उपाय

ज्योतिषशास्त्र एवं भारतीय कृषि शास्त्र में वृक्षों में लगने वाले रोगों तथा उन रोगों से निदान पाने

का वर्णन बहुत ही सरल तरीके से किया गया है बृहत्-संहिता में वृक्षों में लगने वाले रोगों के ज्ञान के बारे में वर्णन मिलता है कि-

शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता।
अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः॥

वृक्षों में अधिक शीत, वायु और धूप लगने से रोगों की उत्पत्ति होती है। रोगी वृक्षों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं अर्थात् सुखने लगते हैं। उनके अंकुर नहीं बढ़ते हैं डालियाँ सूख जाती हैं और उनसे रस टपकने लगता है। अब हम जान लेते है भारतीय कृषि शास्त्र में वृक्षों पर पड़ने वाले रोगों का ज्ञान कैसे किया जाता है सभी प्रकार के वृक्षों में दो प्रकार के व्याधियाँ (रोग) पाई जाती है १. आन्तरिक २. बाह्य। वृक्षों के शरीर रचना की आन्तरिक व्याधियों में वात, पित्त एवं कफ जन व्याधियों मुख्य हैं जबकि बाह्य व्याधियों में कीट पतंगों के साथ ही शीत, ग्रीष्म एवं वर्षा आदि ऋतु जन व्याधियाँ मुख्य होती हैं। वृक्षों के आन्तरिक व्याधि के अन्तर्गत आने वाले वात व्याधि के द्वारा जन्य रोग तब होते हैं जब भूमि में अत्यधिक मात्रा में रुक्ष, कषाय आदि तत्वों को प्रदान किया जाता है या ऐसी सुखाने वाली वस्तुएं मिल जाती हैं। वात व्याधि से जन्य रोगों से पीड़ित वृक्ष को इस प्रकार से जानना चाहिए उस वृक्ष के तनों का कृश हो जाना, पत्ती और तनों पर गांठें आ जाना, उस वृक्ष के फलों में कठोरता एवं कम रसीला होना, और मिठास की कमी हो जाना आदि है। वृक्षों के आन्तरिक व्याधि के अन्तर्गत कफ जन व्याधि इस प्रकार से होती है वृक्षों में कफ जन व्याधियाँ प्रायः जाड़ा या वसन्त ऋतु में होती हैं। इसका कारण है यदि उक्त अवधि में वृक्षों को मीठा, तैलीय, अम्लीय एवं अधिक शीतलता देने वाले द्रव्यों से युक्त पानी या आहार को अत्यधिक मात्रा में दिया जाए। कफ व्याधि से उत्पन्न रोगों का लक्षण किस प्रकार से है इस व्याधि से पीड़ित वृक्ष को फल धारण करने में अधिक समय लगता है, वृक्ष में पीलापन आ जाना, पत्तियों का मुड़ जाना, फलों की वृद्धि नहीं होना, असमय फल लगना और फलों का निरस होना आदि हैं। वृक्षों के आन्तरिक व्याधियों के अन्तर्गत आने वाले पित्त व्याधि कुछ इस प्रकार से होती है वृक्षों में पित्तज दोष ग्रीष्म काल और बादलों के आगमन काल में प्रकट होते हैं इसका कारण पेड़ों को खनिज, कटु, अम्लीय एवं लवणीय आदि द्रव्य से सींचा जाना है। वृक्षों में पित्त व्याधि से उत्पन्न रोगों का लक्षण कुछ इस प्रकार से है वृक्षों की पत्तियां अकाल ही पीली पड़ जाती हैं, फल समय से पहले गिरने लगते हैं, पेड़ सूखने लगता है, पत्ते, पुष्प और फल सूखे पड़ जाते हैं या पीले होकर कर नष्ट हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार से वृक्षों में रोगों की उत्पत्ति होती है जैसे कि जाड़ों में कृमि लग जाए तो भी वृक्ष सूखने लगते हैं और पत्ते पीले पड़ जाते हैं। तीव्र ताप या ताप घात के कारण भी पत्ते पीले होकर गिरने लगते हैं। कई बार प्राकृतिक आपदाओं के चलते भी वृक्षों को हानि होती है। प्रचण्ड हवाओं के प्रभाव से भी वृक्ष टूट जाते हैं, जड़ों से उखड़ जाते हैं या झुक जाते हैं। यही नहीं भग्न होकर विभेदित हो जाते हैं या तो दो फाड़ में विभाजित हो जाते हैं। कभी-कभी वृक्ष आगजनी के शिकार होकर या तड़ित से भी सूख जाते है। हर एक प्रकार का वृक्ष तब भी सूख जाता है या फिर उस वृक्ष का हर एक तरह से विकास भी रुक जाता है जब कोई व्यक्ति या जानवर के द्वारा उस वृक्ष पर वार से घाव या व्रण किया गया हो। बीज के दूषित होने से भी कुछ वृक्षों में अनेक प्रकार के रोग आ जाते है या फिर बीज का उपचार गलत हो जाने पर भी या उपचार पर उपचार किए जाने से भी खराब हुए बीजों से व्याधियां हो जाती है और वे वृक्ष बाँझ हो जाते है तथा उस वृक्ष का उत्पादन क्षमता भी कम हो जाती है। कुछ कारण ये भी है कि वृक्षों के अपने निकटवर्ती वृक्षों से टकराव हो जाने से या फिर लगातार अन्य वृक्षों कि छाया में बने रहने से भी,

उस वृक्ष पर विभिन्न प्रकार के पक्षियों का जमघट बने रहने से, अमरबेल वल्लरियों का अत्यधिक लिपटें रहने से भी और खरपतवार के उग आने से भी इन कारणों से भी वृक्ष अपने-अपने विकास को नही प्राप्त कर पाता वरन् विनाश के रास्ते पर चला जाता है।

अब रोगों से पीड़ित वृक्षों के उपचार को भी जान लेते है कहते है कि उपर्युक्त विभिन्न कारणों को सर्वदा ध्यान में रख कर ही वृक्षों के व्याधियों के कारणों का परीक्षण कर ही उनका उपचार करना चाहिए। यह ज्ञातव्य है कि उपचार के लिए परामर्श उसी का लिया जाए जिसके उद्योग में उच्च बौद्धिक क्षमता हो। उसकी परामर्श पर ही वृक्षों के बचाव के लिए चिकित्सा की जानी चाहिए। वात व्याधियों के उपचार के लिए वृक्षों को मेद, वसा और घृत दिया जाता है। कुणप जल का भी प्रयोग इस व्याधि के उपचार के लिए किया जाता है। अरिष्ठ, गाय के सींग, घोड़े के केश, शण, घी, शिशुमार के तेल एवं कोल के मेद के मिश्रण की यदि वृक्षों को यदि धूलि दी जाए तो वात व्याधि तत्काल रुप से दूर हो जाता है। कफ से हुए कषाय, कटु एवं तीक्ष्ण रोगों के शमन के लिए पञ्च मूल क्वाथ का प्रयोग प्राचीन काल से किया जा रहा है। सफेद सरसों की कल्क या लई को यदि वृक्षों के जड़ों को दिया जाए या फिर उनके जड़ों में लेपन किया जाए और उस पर तिल एवं राख मिश्रित जल का छिड़काव करे तो कफ रोगों से वृक्षों को छुटकारा मिल सकता है। कफ जन्य व्याधियों के शमन के लिए वृक्ष के चारों ओर फैली जड़ों को हटा ले और जड़ों में नवीन, सुखी हुई मिट्टी भर दे। पित्त जन्य व्याधि होने पर वृक्षों के लिए शीतल, मधुर द्रव्यों की विधि से उपचार करना उचित माना गया है। पित्त जन्य व्याधियां होने पर वृक्षों को दूध, शहद, मुलेठी और मधु का क्वाथ तैयार कर देना चाहिए। या फिर पित्त व्याधियों से छुटकारा पाने के लिए वृक्षों को फूलों का क्वाथ, त्रिफला, घी एवं शहद का मिश्रण देना चाहिए। दूध, कुणप, भिल्लोट, वसा, गाय के गोबर का जल में घोल बनाकर देने से और सफेद सरसों, वचा, कुष्ठ, अतिविष के लेपन किए जाने से भी वृक्षों को कृमियों से छुटकारा मिल जाता है। वृक्षों पर यदि जंतुओं से व्रण या घाव बना दिया गया हो तो विहङ्ग, तिल, गोमूत्र, घी और सिद्धार्थ या सरसों मिश्रित घोल दे या उस घाव के ऊपर लेपन करें तथा ऊपर से दूध भी दिया जाए तो वह घाव जल्द ही ठीक हो जाता है। इसी प्रकार जिस भी वृक्ष बर्फबारी ओलावृष्टि या फिर अति ताप आदि से प्रभावित हो गए हो तो उन्हें आवरण से बाहर से आच्छादित कर दे तथा कुणप जल और दूध से सिञ्चना चाहिए इससे उन्हें आराम मिलेगा। यदि किसी वृक्ष की शाखाएं गिरने लगे तो उस शाखा के तड़कने वाले स्थान पर शहद एवं घी के मिश्रण का लेप करें। उस पर दूध मिले पानी का छिड़काव भी करें। ऐसे किए जाने पर वह शाखा पुनर्जीवित हो जाता है और गगन चुम्बी भी होता है। आग से झुलसे हुए वृक्ष के सभी ओर पद्मिनी और कीचड़ का आलेपन करें और फिर कुणप जल से सिंचाई करें। इससे उस वृक्ष की शाखाएं पुनः फूट जाती है। यदि निस्सार हुए मिट्टी की खराबी के कारण वृक्ष सूखता हुआ दिखाई दे तो वह मिट्टी हटाकर नई मिट्टी भर दे और वृक्ष को दूध मिश्रित जल से सिञ्चित करें इससे वह वृक्ष पुनः हरा भरा हो जाएगा।

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिषशास्त्र में वृक्षों के रोपण, उन वृक्षों के रोग एवं निदान, वृक्षों को किस क्रम से लगाना चाहिए तथा वृक्षों को गृह के कौन-कौन से भाग (दिशा) में लगाना शुभ एवं अशुभ होता है। इस विषय पर अर्थात् वृक्षायुर्वेद पर समस्त संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में बहुत ही सुन्दर रूप में प्रतिपादित किया है। ग्रन्थों में वर्णन

प्राप्त होता है कि एक अश्वत्थ, एक नीम, एक न्यग्रोध या बरगद, दस चिन्चिनीक या इमली के वृक्ष लगाने से और कैथ, बिल्व व आँवला के तीन तीन तथा आम का पांच वृक्ष लगाने से मनुष्य कभी नरक को प्राप्त नही होता है। यह बात आप सभी को ज्ञात है कि इस संसार में केवल वृक्ष ही इहलौकिक और पारलौकिक आनन्द की अनुभूति करा सकते हैं। वृक्ष इस संसार को नाना प्रकार के कष्टों, आपदाओं से बचाते है इसीलिए इन्हें इस संसार का मूलरक्षक भी कहा जाता है। यदि वृक्षों की उचित रूप से देखभाल की जाए तो वे अपनी छाया, पुष्प और फलों के माध्यम से हमारे लिए धर्म, अर्थ और मोक्ष की साधना में अत्यन्त ही सहायक होते है। वृक्ष लगाने वाले व्यक्ति को वृक्षों पर तिल कि खली और विडङ्ग का आलेपन करना चाहिए। ये उन वृक्षों को कीट इत्यादि से सुरक्षित रखते हैं। वृक्षों के लिए दूध, पानी और कुणप जल आदि का प्रयोग करते रहना चाहिए। उन वृक्षों को आवश्यकता अनुसार घृत कि धूप देकर उपचारित करते रहना चाहिए। इससे वे वृक्ष हमेशा रोग मुक्त एवं सुन्दर, स्वादिष्ट फूल और फलों से युक्त रहते है।

3.5 शब्दावली

व्याधि – रोग

तृण – घास

कुणप जल – तरल खाद

वृक्ष का मूल – वृक्ष की जड़

वृष्टि – वर्षा

क्वाथ – काढा

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

बृहत्संहिता

गरुड़पुराण

वृक्षायुर्वेद

बृहद् वास्तुमाला

3.7 बोधप्रश्न

१. वृक्षायुर्वेद से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।

२. वृक्षों के रोपण के लिए उचित भूमि का चयन कैसे करें।

३. वृक्षों में होने वाले रोगों के कारणों तथा उनके प्रकारों को स्पष्ट कीजिये।

४. वृक्षों के लगाने के क्रम का वर्णन कीजिये।

५. वृक्षों के रोगों का आयुर्वेदिक निदान कैसे करें।

इकाई 4 प्राकृतिकोत्पात

इकाई की संरचना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 प्राकृतिक आपदाओं का परिचय

4.4 दिव्य, भौम, अन्तरिक्ष उत्पात विवेचन

4.5 आपदाओं की शान्ति के उपाय

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 सन्दर्भग्रंथ

4.9 बोधप्रश्न

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- बता सकेंगे कि प्राकृतिक आपदा किसे कहते हैं।
- प्राकृतिक आपदा के स्वरूप को भली-भाँती समझा सकेंगे।
- बता सकेंगे कि प्राकृतिक आपदा के अन्तर्गत क्या-क्या होता है।
- प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार जान सकेंगे।
- उत्पात के कारणों को भली भाँती जान सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई सप्तम पाठ्यक्रम संहिता ज्योतिष के चतुर्थ खण्ड दकार्गलादि विचार की चौथी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - प्राकृतिक आपदाओं का विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने वृक्षायुर्वेद से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई के अन्तर्गत प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं। प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा जिसको उत्पात के नाम से भी जाना जता है, जिनके मुख्यतः तीन विभाग है, जो इस प्रकार हैं 1. दिव्य उत्पात (आपदा) 2, भौम उत्पात (आपदा) 3, अन्तरिक्ष उत्पात (आपदा) जिनमें होने वाले उत्पतों के नाम निम्नप्रकार से हैं। जैसे- भूकम्प, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, उल्कापातादि। प्रकृति से सम्बन्धित उत्पात को प्राकृतिक आपदा (उत्पात) की संज्ञा दी गयी है। अत: आइये संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत प्राकृतिक आपदाओं के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते हैं।

4.3 प्राकृतिक आपदाओं का परिचय

प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि जिन आपदाओं का सम्बन्ध सीधे-सीधे प्रकृति से जुड़ा हो, उसे प्राकृतिक आपदा कहते हैं। इसका क्षेत्र भी प्रकृति की तरह ही अतिविस्तृत है। सम्प्रति इसे 'डिजास्टर' के नाम से भी जाना जाता है। आपदा-प्रबन्धन के नाम से इसका अध्ययन-अध्यापन भी कराया जाता है। इसके अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, समर्घ-महर्घ, पर्यावरण सम्बन्धित समस्यायें, उल्कापातादि, धूमकेतु, वृक्षों से सम्बन्धित, अन्न से सम्बन्धित, पशुपक्षियों से सम्बन्धित, इन्द्रध्वज सम्बन्धित, राष्ट्र एवं विश्व से सम्बन्धित नाना प्रकार की आपदायें आदि इत्यादि विषय आते हैं। संहिता ज्योतिष में उक्त सभी विषयों को भूमिजन्य, आकाशजन्य और देवताओं से सम्बन्धित मुख्यत: तीन उत्पात – भौम, दिव्य एवं अन्तरिक्ष उत्पातों में विभक्त किया गया है। आइए हम सब इसका विस्तृत अध्ययन इस इकाई में करते हैं।

4.4 दिव्य, भौम, अन्तरिक्ष उत्पात विवेचन

आपदाओं के बारे में आचार्य वराहमिहि स्वग्रन्थ 'बृहत्संहिता' में कहते हैं कि-

अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति।
संसूचयन्ति दिव्यन्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः॥

अर्थात् मनुष्यों के अविनय से जो पाप इकठ्ठे एकत्रित होते हैं उन पापों को उपद्रव कहते हैं तथा दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम उत्पात उन उपद्रवों को सूचित करता हैं।

यः प्रकृतिविपर्यासः सर्वः संक्षेपतः स उत्पातः।
क्षितिगगनदिव्यजातो यथोक्तरं गुरुतरो भवति॥

अर्थात् प्रकृति का अन्यत्व अर्थात् विपरीत होने की उत्पात संज्ञा बतायी गयी है। प्रकृति के विपरीत होने पर भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य, ये तीन प्रकार के उत्पात होते हैं। मनुष्यों में जब विनम्रता नहीं रहती, पापकर्म करने लगते हैं। और जब पाप बहुत बढ़ जाता है तो इससे प्रकृति में उपद्रव होने लगता है, इसी उपद्रव को आचार्यो ने उत्पात संज्ञा दी है।

अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्मतः।
नरापचारांन्नियतमुपसर्गः प्रवर्तते॥

अति लोभ से, असत्य से, नास्तिकता से, अधर्म से, मनुष्यों के अनाचार से, नित्य ही उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

तद्वशास्त्रिविधोत्पाता जायन्ते शोकदुखदाः।
दिव्यान्तरिक्षाक्षितिजविकारा घोररूपिणः॥

उस उपद्रव वश तीन प्रकार के शोक और दुःख देने वाले उत्पात उत्पन्न होते हैं। दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भूमिजन्य भयंकर रूप वाले विकार कहे गये हैं।

स्वर्भानुकेतुनक्षत्रग्रहताराकेजेन्द्रजम्।
दिवि चोत्पद्यते यच्च तद्दिव्यमिति कीर्तितम्॥

सूर्यादि ग्रह नक्षत्रों से उत्पन्न और केतुओं से उत्पन्न विकार दिव्य संज्ञक कहे गये हैं। अर्थात् सूर्यादि ग्रह और अश्विनी आदि नक्षत्रों के विकारयुक्त होने से जो उत्पात होता है, उसे दिव्य संज्ञा दी गयी है। निर्घात, परिवेश, उल्का, इन्द्रधनुष और ध्वज।

वाय्वभ्रसन्ध्यादिग्दाहपरिवेषतमांसि च।
खपुरं चेन्द्रचापं च तद्विन्द्यादन्तरिक्षजम्॥

उल्का,निर्घात, विकारयुक्त वायु, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, दिग्दाह, गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष, लोहित, ऐरावत, ऊँट, अश्व, कबन्ध तथा परिघ आदि से उत्पन्न हुए उत्पातों को

अन्तरिक्ष उत्पात कहा जाता है।

भुवावुत्पद्यते यच्च स्थावरं वाथ जङ्गमम्।
तदेकदैशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तितम्॥

पृथ्वी के चलायमान होने से अथवा चर वस्तु के स्थिर एवं स्थिर वस्तु के चलायमान हो जाने पर भौम (भूमि) सम्बन्धी उत्पात की संज्ञा दी गयी है।

आत्मसुतकोशवाहनपुरदारपुरोहितेषु।
पाकमुपयाति दैवं परिकल्पितमष्टधा नृपतेः॥

स्व शरीर,पुत्र, भाण्डार, वाहन, नगर, स्त्री, पुरोहित, जनपद, इन आठ प्रार के दैव उत्पात के द्वारा राजा पीड़ित होता है।

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति वा।
मुहुर्नृत्यन्ति रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति वा॥

उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति पतन्ति वा।
कूजन्ति विक्षिपन्ते च गात्रप्रहरणध्वजान्॥

अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात् स्थानं व्रजन्ति वा।
वमत्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम्॥

प्रसर्पन्ति च जल्पन्ति वा चेष्टन्ते श्वसन्ति वा।
समन्ताद्यत्र दृश्यन्ते गात्रैर्वापि विचेष्टितैः॥

बिना कारण दैवमूर्तियों का नृत्य करना, मूर्तियों से अग्नि प्रगट होना, बार-बार नृत्य करना, मूर्तियों से अश्रु (रोना) की धार निकलना, हसना, जगह से हटना, अचानक से मूर्तियों का खण्डित होना, कम्पन करना, मूर्तियों में पसीना आना, गिरना, उनमें शब्द होना तथा उनका वमन करना ये सब राजा और देश के लिए नाश का कारक होता है।

दैवतयात्राशकटाक्षचक्रयुगकेतुभङ्गपतनानि।
सम्पर्यासनसादनसङ्गश्च न देशनृपशुभदाः॥

देवस्थानों में यात्रा के समय वानह की धुरी,पहिया, इञ्जन इत्यादि का खराब होना, गिरना, उलटाना-पलटना, खण्डित होना ये सब राजा एवं देश लिए शुभकारी नही होते।

ऋषिधर्मपितृब्रह्मप्रोद्भूतं वैकृतं द्विजातीनाम्।
यद्रुद्रलोकपालोद्भवं पशूनामनिष्टं तत्॥

गुरुसितशनैश्चरोत्थं पुरोधसां विष्णुजं च लोकानाम्।
स्कन्दविशाखसमुत्थं माण्डलिकानां नरेन्द्राणाम्॥

वेदव्यासे मन्त्रिणि विनायके वैकृतं चमूनाथे।
धातरि सविश्वकर्मणि लोकाभावाय निर्दिष्टम्॥

देवकुमारकुमारीवनिताप्रेष्येषु वैकृतं यत् स्यात्।
तन्नरपतेः कुमारककुमारिकास्त्रीपरिजनानाम्॥

रक्षः पिशाचगुह्यकनागानामेवमेव निर्दिष्टम्।
मासैश्चाप्यष्टाभिः सर्वेषामेव फलपाकः॥

मुनि, धर्म, पिता और ब्रह्मा में उत्पन्न विकृति ब्राह्मणों को, महादेव और लोकपालों (इन्द्रादि) में उत्पन्न विकृति पशुओं को, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर में उत्पन्न विकृति पुरोहितों को, विष्णु में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को, कार्तिकेय और विशाक देव में उत्पन्न विकृति मण्डलाधिप राजाओं को, वेदव्यास में उत्पन्न विकृति मन्त्री को, गणेश में उत्पन्न विकृति सेनापति को, ब्रह्मा और विश्वकर्मा में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को, देवकुमारों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को, देवकुमारियों में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को, देवाङ्गनाओं में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को तथा देवताओं के दास में उत्पन्न विकृति राजाओं के सेवकों को अशुभ (कष्ट) फल प्रदान करने वाली होती हैं। एवमेव राक्षसों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को, पिशाचों में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को, यक्षों में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को और नागों में उत्पन्न विकृति रोजसेवकों को अशुभ फल प्रदान करने वाली होती हैं। उपरोक्त बताये गये सभी उत्पातों के फल आठ मास के अन्दर घटित होते हैं।

राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान्।
मनुजेश्वरस्य पीडा तस्य च राष्ट्रस्य विज्ञेया॥

जिस राज्य में विना अग्नि के अग्नि की ज्वाला दिखाई पडे तथा काष्ठ से युक्त अग्नि प्रज्वलित न हो उस राज्य के राजा तथा राज्य दोनों को पीड़ा (कष्ट) होती है।

दिवान्धकारो वृक्षाणां राजनाशो भवेत्तदा।
रात्रावदर्शन व्यभे तेषामग्निश्च निष्प्रभः॥

दिन में वृक्षों का अन्धकारयुक्त हो जाना तथा रात्रि के समय में बादल के बिना नक्षत्रों का अदर्शन और अग्नि का कान्तिरहित होना राजा का नाश करता है।

तदधीशस्य राष्टस्य दुःखशोकभयप्रदः।
शयनासनवस्त्राणां पादुकेभ्यो नृगात्रतः॥

उस स्थान का अधिपति अर्थात् राजा (राष्ट्राध्यक्ष) को दुःख, शोक एवं भय देता है।

शयनाशन (चारपाई), वस्त्र तथा जूते आदि में मनुष्यों के शरीर से जलन उत्पन्न हो।

महिषोष्टाश्वगोहस्तिपशुकेशेषु गात्रतः।
धूमाग्निविस्फुलिंगा वा दृश्यन्ते च जलादिषु॥

राजराष्ट्रविनाशः स्याच्छत्रुतोऽग्नेर्भयं भवेत्।
आयुधानि प्रज्वलन्ति कोशेभ्यो निर्गतानि च॥

भैसा, ऊँट, घोड़ा, गाय, हाथी, अन्य पशु के बालों में तथा शरीर में धुंआ अग्नि आदि के चिंगारी दिखाई पड़ें अथवा जल आदि में, तो राजा और राष्ट्र का विनाश होता है अथवा शत्रु से अग्नि का भय होता है। जब अस्त्र-शस्त्र चलते हुए दिखाई पड़ें अथवा अपने म्यान से स्वयं निकल जायें।

वेपमानानि यदि वा जल्पन्त्यथ रुदन्ति वा।
हसन्ति तुमुलं युद्धमत्यन्तनिकटं वदेत्॥

यदि अस्त्र-शस्त्र में कम्पन हो अथवा बकबक करे, रोने लगे, हंसने लगे, तो बहुत जल्दी घनघोर युद्ध होने वाला है। ऐसा कहना चाहिए।

जलमांसार्द्रज्वलने नृपतिवधः प्रहरणे रणो रौद्रः।
सैन्यग्रामपुरेषु च नाशो वह्नेर्भयं कुरुते॥

जल, मांस और गीली वस्तु में अकारण अग्नि उत्पन्न हो तो राजा के लिए मृत्यु तुल्य, खड्ग आदि में अग्नि उत्पन्न हो तो भयंकर युध्द की सम्भावना तथा यदि राज्य में अग्नि न मिले तो राज्य को अग्नि भय होता है।

प्रासादभवनतोरणकेत्वादिष्वननलेन दग्धेषु।
तडिता वा षण्मासात् परचक्रस्यागमो नियमात्॥

प्रासाद (देवगृह), घर, तोरण या ध्वज अग्नि या बिजली के बिना दग्ध हो जाए तो छः मास बाद निश्चित ही दूसरे राजा की सेनाओं का आगमन होता है।

वृक्षों के द्वारा आपदाओं का ज्ञान-

शाखाभङ्गेऽकस्माद्वृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम्।
हसने देशभ्रंशं रुदिते च व्याधिबाहुल्यम्॥

अचानक से वृक्ष की शाखा जाने से युद्ध की तैयारियाँ, वृक्षों के हँसने से राज्य का नाश तथा वृक्षों के रोदन करने से रोग-व्याधि की अधिकता राज्य में होती है।

राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते बाले।
वृक्षात् क्षीरस्त्रावे सर्वद्रव्यक्षयो भवति॥

बिना ऋतु के वृक्षों में फूल एवं फलों की उत्पत्ति से राज्य में विभेद होता है, छोटे वृक्षों में बहुत ज्यादा (उसकी अपेक्षा) पुष्प आने से राज्य के बालक-बालिकाओं को कष्ट की प्राप्ति तथा बिना दूधदार वृक्षों में दूध निकलने से राज्य में द्रव्यों का नाश होता है।

मद्ये वाहननाशः स्याच्छोणिते युद्धमादिशेत्।
स्नेहस्त्रावेऽनर्घभयं जलस्त्रावे महायम्॥

वृक्षों से मदिरा बह रही हो तो वाहन का नाश, यदि रक्त निकल रहा हो तो युद्ध होगा ऐसा कहना चाहिए। तेल के स्रवित होने पर महंगाई का भय जबकि जल के स्रवित होने पर भयंकर भय होने का योग बनता है।

क्षौद्रद्रावो भवेद्यत्र रोगशोकभयं भवेत्।
शुष्कवृक्षे चांकुरिते वृक्षहानिस्त्वनर्घता॥

अकस्माच्छोषिते वृक्षे तदेव फलमिष्यते।
पतिते स्वयमस्थाने भयं देवकृतं भवेत्॥

वृक्ष में छोटा घाव यदि दिखाई पड़ें तो रोग, शोक एवं भय जानना चाहिए। यदि सूखा वृक्ष अंकुरित हो गया हो तो वृक्ष की हानि अथवा महंगाई जाननी चाहिए। अकस्मात् वृक्ष के सूख जाने पर भी उसमें फल दिखाई पड़े अथवा बिना स्थान के स्वयं गिर पड़े तो देवकृत भय होता है।

सस्य (अन्न) के द्वारा आपदाओं का ज्ञान-

नालेऽब्जयवादीनामेकस्मिन् द्वित्रिसम्भवो मरणम्।
कथयति तदधिपतीनां यमलं जातं च कुसुमफलम्॥

अर्थात् कमल, जौ, गेहूँ आदि के एक पेड (नाल) में दो या तीन बाल की उत्पत्ति हो तो राज्य के अधिपति के मरण तुल्य होता है। एवं यमल पुष्प तथा फलों की उत्पत्ति हो तो भी राज्य के अधिपति के लिए कष्ट प्रद होता है।

अतिवृद्धिः सस्यानां नानाफलकुसुमसम्भवो वृक्षे।
भवति हि यद्येकस्मिन् परचक्रस्यागमो नियमात्॥

यदि धान्यों की अत्यन्त ज्यादा वृद्धि हो जाए तथा एक वृक्ष में अनेक प्रकार के फल और पुष्पों की उत्पत्ति हो तो निश्चित ही अशुभता का प्रतीक होता है।

अर्धेन यदा तैलं भवति तिलानामतैलता वा स्यात्।
अन्नस्य च वैरस्यं तदा तु विन्द्याद् भयं सुमहत्॥

जब तिल के परिमाण से आधे मात्रा में तेल का परिणाम हो या तिल से बिल्कुल ही तेल नही निकलता हो और अन्न में विरसता मालूम हो तो राज्य के लिए अत्यन्त भय कारी होता है।

वृष्टि तथा जल के द्वारा आपदाओं का ज्ञान-

दुर्भिक्षमनावृष्टावतिवृष्टौ क्षुद्भयं परभयं च।
रोगो ह्यनृतुभवायां नृपतिवधोऽनभ्रजातायाम्॥

आचार्य वृष्टि के योग द्वारा उत्पात के लक्षण बता रहे हैं कहते है यदि अनावृष्टि हो तो दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि हो तो दुर्भिक्ष तथा शत्रुओं से भय, वर्षा ऋतु से भिन्न ऋतु में ज्यादा वृष्टि हो तो रोगों

की उत्पत्ति, विना मेघ (बादल) के वृष्टि हो तो राजा को कष्ट होता है।

शीतोष्णविपर्यासो नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु।
षण्मासाद्राष्ट्रभयं रोगभयं दैवजनितं च॥

शीत और ऊष्ण में व्यत्यय होने पर अर्थात् ठण्ड के समय में गर्मी और गर्मी के समय में ठण्ड पड़ने पर तथा जिस ऋतु का जो स्वाभाविक धर्म है वह ठीक-ठीक नही होने से छः मास बाद राष्ट्रभय और दैव जनित रोगभय होता है।

अन्यर्त्तौ सप्ताहं प्रबन्धवर्षे प्रधाननृपमरणम्।
रक्ते शस्त्रोद्योगो मांसास्थिवसादिभिर्मरकः॥

धान्यहिरण्यत्वक्फलकुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विन्द्यात्।
अङ्गारपांशुवर्षे विनाशमायाति तन्नगरम्॥

वर्षाऋतु से भिन्न ऋतु में लगातार एक सप्ताह वृष्टि होने पर राज्य के राजा को मृत्यु तुल्य कष्ट, रक्त की वृष्टि होने पर युद्ध, मांस-हड्डी-वसा (घृत,तेल) आदि की वृष्टि होने पर मिरगी पड़ती है। धान्य, सोना, वृक्ष की छाल, फल, पुष्प, पत्रादि की वृष्टि हो तो भय एवं कोयले और धूली की वृष्टि हो तो राज्य का नाश होता है।

व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा यदा दृश्यतेऽथवा रात्रौ।
प्राच्यामपरस्यां वा तदा भवेत्क्षुद्भवं सुमहत्॥

मेघ रहित आकाश मण्डल में दिन या रात्रि में पूर्व या पश्चिम दिशा में इन्द्र धनुष दिखाई दे अत्यन्त दुर्भिक्ष समझना चाहिए।

अपसर्पणं नदीनां नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते।
शोषश्चाशोष्याणामन्येषां वा ह्रदादीनाम्॥

स्नेहासृङ्मांसवहाः सङ्कुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि।
परचक्रस्यागमनं नद्यः कथयन्ति षण्मासात्॥

यदि राज्य के मध्य या पास में बहती हुई नदियाँ दूर चली जाएँ अर्थात् अपना मार्ग परिवर्तित करदें या नही सूखने वाली नदियाँ सूख जाए तो शीघ्र ही राज्य अथवा नगर प्राणियों से शून्य हो जाता है। यदि नदियों में तेल, रुधिर या मांस बहने लगे अथवा जल स्वल्प और मलीन हो जाए तो छः मास बाद परचक्र का आगमन होता है।

ज्वालाधूमक्वाथारुदितोत्क्रुष्टानि चैव कूपानाम्।
गीतप्रज्वल्पितानि च जनमरकायोपदिष्टानि॥

कूप में अग्नि की ज्वाला, धूआँ, जल का उबलना, रोने की ध्वनि, गीत या और किसी प्रकार के शब्द नगर के लोगों के मृत्यु कारी कष्ट के सूचक होते है।

सलिलोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च तोयानाम्।
सलिलाशयविकृतौ वा महद्भयं तत्र शान्तिमिमाम्॥

विना खोदी हुई जमीन से जल निकलना, जल के गन्ध एवं स्वाद में विपरीतता होना तथा जलाशयों में विकार होना ये सब लक्षण राज्य को अग्निभय देने वाला होता है।

प्रसव के द्वारा आपदाओं का ज्ञान-

प्रसविकारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुष्प्रभृतिसम्प्रसूतौ वा।
हीनातिरिक्तकाले च देशकुलसंक्षयो भवति॥

स्त्रियों को किसी प्रकार का प्रसवविकार (घोड़ा,बैल,सर्पादि) होने पर अथवा एक साथ दो, तीन, चार आदि बच्चे होने पर अथवा प्रसवकाल (तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशको य इत्यादि से निर्णीत काल) से पहले या बाद में प्रसव होने पर देश तथा कुल को क्षति होती है।

अकाले प्रसवे चैव कालातीतेऽथवा पुनः।
असङ्ख्याजनने चैव युग्मस्य प्रसवे तथा॥

अमानुषाणि काण्डानि सञ्जातव्यञ्जनानि च।
अनङ्गा ह्याधिकाङ्गा वा हीनाङ्गाः सम्भवन्ति वा॥

विमुखाः पक्षिसदृशास्तथार्धपुरुषाश्च वा।
विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्॥

अप्राप्तवयसे गर्भे द्वौ चतुष्पात् त्रयोऽपि वा।
अत्युच्चा विनताश्चापि प्रजायन्तेऽनयो भवेत्॥

वडवा हस्तिनी हौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते।
विजन्यं विकृतं वापि षड्भिर्मासैर्नृपक्षयः॥

समय से पूर्व अथवा समय व्यतीत होने के बाद विलम्ब से प्रसव हो, एक से अधिक संख्या में प्रसव हो, विजातीय प्रसव हो, मिश्रित प्रसव हो ऐसी स्थिति होने पर देश का विनाश होता है। वायस गर्भ से दो,तीन,चार प्रसव एक साथ हो तो प्रजा के लिए अशुभकारी होता है। घोडा, हाँथी, भैंस, गाय और ऊँटनी को एक साथ दो बच्चे हो तो उनके सन्तान का हानि होती है। इसका फल छः मास में प्राप्त होता है।

अब यहाँ कुछ आश्चर्य पूर्ण उत्पातों का वर्णन करते है-

गन्धर्वनगरं चैव दिवा नक्षत्रदर्शनम्॥
महोल्कापतनं काष्ठतृणरक्तप्रवर्षणम्।
गन्धर्वगेहे दिग्धूमं भूमिकम्पं दिवानिशि॥

आकाश में (गन्धर्वनगर) सुन्दर-सुन्दर नगरों का दिखाई पड़ना, दिन में तारों का दिखाई देना, उल्कापात (तारे टूटना) लकड़ी, तृण तथा खून की वृष्टि होना। आकाश में तथा दिशाओं में अकारण धूम दिखाई पड़ना तथा भूकम्प होना ये अशुभ सूचक हैं।

अनग्नौ च स्फुलिंगाश्च ज्वलनं च विनेन्धनम्।
निशीन्द्रचापमण्डूकशिखरं श्वेतवायसः॥

विना अग्नि के स्फुलिंग (चिनगारी), विना ईन्धन की ज्वाला, रात्रि में इन्द्रधनुष, मेढक की चोटी और सफेद काग का दिखाई पड़ना अमंगल सूचक होता है।

प्रतिसूर्याश्फचसृषुस्युर्दिक्षु युगपद्रवेः।
जम्बूकग्रामसंवासः केतूनां च प्रदर्शन॥

दो सूर्य का दिखाई देना या एक साथ चारों दिशाओं में सूर्य का दर्शन होना। गाँव के अन्दर श्रृगाल का छिपना तथा पुच्छल तारों का दिखाई देना अमंगल सूचक है।

काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि।
अकाले पुष्पिता वृक्षाः दृश्यन्ते फलिता यदि॥

कार्यं तच्छेदनं तत्र ततः शान्तिर्मनीषिभिः।
एवमाद्या महोत्पाता बहवः स्थाननाशदाः॥

दिन में कबूतरों का और रात्रि में कौओं का व्याकुल होना भी अशुभ सूचक होता है। यदि असमय में बिना ऋतु के वृक्ष फूले या फले तो बुद्धिमानों को चाहिए कि तुरन्त उसे काट कर उपद्रव की शान्ति करें।

नारद संहिता में कथित गन्धर्व नगर का लक्षण-

गन्धर्वनगरं दिक्षु दृश्यतेऽनिष्टदं क्रमात्।
भूभुजा वा चमूनाथसेनापतिपुरोधसाम्॥

पूर्वादि दिशाओं में यदि गन्धर्वनगर दृष्टिगोचर हो तो राजा, सेनापति, मन्त्री और राज

पुरोहित का क्रमशः अनष्टि होता है।

सित, रक्त, पीत कृष्णं विश्रादीनामनिष्टदम्।
रात्रौ गन्धर्वनगरं धराधीशविनाशनम्॥

सफेद, लाल, पीला और काले वर्णवाला गन्धर्वनगर क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्ण के लिए अनिष्ट सूचक होता है। यदि गन्धर्वनगर रात्रि में देखा जाय तब राजा का विनाश होता है।

इन्द्रचापानिधूमाभं सर्वेषामशुभप्रदम्।
चित्रवर्णं चित्ररूपं प्राकारध्वजतोरणम्।।

दृश्यते चेन्महायुद्धमन्योन्यं धरणीभुजाम्॥
चेत् दृश्यते तदा धरणीभुजाम् अन्योन्यं युद्धं भवेत्।

इन्द्रचाप, अग्नि अथवा धूम की तरह यदि गन्धर्वनगर दिखाई दे तो सभी के लिए अनिष्ट सूचक होता है। चित्रवर्ण, चित्ररूप, किला, ध्वज या तोरण के आकार में दिखाई देने पर राजाओं में परस्पर युद्ध होता है।

प्रतिसूर्यलक्षण-

प्रतिसूर्यनिभः स्निग्धः सूर्यः पार्श्वे शुभप्रदः।
वैडूर्यसदृशस्वच्छः शुकोलवाऽपि सुभिक्षकृत्॥

कभी-कभी बादलों और सूर्यकिरणों के सांघातिक योग से सूर्य का दूसरा बिम्ब भी दृष्टिगोचर हो जाता है उसका दर्शन अनिष्ट सूचक होता है। उसका फल बतलाते हुए भगवान नारद जी कहते हैं कि यदि स्निग्ध वर्ण का विकार रहित प्रतिसूर्य आगे-पीछे (पार्श्र्व में) दिखाई पड़े तो शुभ होता है।

पीताभो व्याधिदः कृष्णो मृत्युदो युद्धदारुणः।
माला चेत्प्रतिसूर्याणां शश्वत् चैर भयप्रदा॥

पीला प्रतिसूर्य रोग देने वाला तथा काले वर्ण का प्रति सूर्य मृत्युकारक एवं दारुण युद्धकारक होता है। यदि प्रतिसूर्यो की माला दृष्टिगोचर हो तो निरन्तर चोरों का भय होता है।

1. प्रति सूर्यः द्वितीय सूर्यः (कभी-कभी ऐसी स्थिति आती है कि दो सूर्य दृष्टिगोचर होता है।

इसे भ्रम कहा जाय या अन्य जो भी नामकरण किया जाय पर ऐसी स्थिति आती अवश्य है। इसे समझने के लिए अपनी एक आँख बन्द करके दूसरी आँख के ऊपर या नीचे के पलकों को थोड़ा हल्का दबाने से स्पष्ट ही ग्रह दो दिखाई पड़ने लगता है। इस तरह बादलों और सूर्य रश्मियों के पारस्परिक संघात से भी स्थिति पैदा होती है और सूर्य का दो बिम्ब परस्पर दृष्टिगोचर होने लगता है।

वराहमिहिर भी कहते है -

पीतो व्याधिं जनयत्य शोकरूपश्च शस्त्रकोपाय।
प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातंकनृपहन्त्रो॥

नारदसंहिता के अनुसार भूकम्प लक्षण-

भूभारखिन्ननागेन्द्रदीर्घनिःश्वाससम्भवः।
भूकम्पः सोऽपि जगतामशुभाय भवेत्तदा॥

भूमि के भार से थक कर जब भगवान शेषनाग निःश्वास करते हैं तो भूकम्प होता है। उक्त धारणा पुराणों के कथानकों से प्राप्त होती है। किन्तु यह सर्वविदित है कि रासायनिक विविध प्रतिक्रियायें भूमिगर्भ में होती रहती है जिनके परिणामस्वरूप विविध खनिज पदार्थ हमें उपलब्ध होते हैं। और जब कभी रासायनिक प्रतिक्रियाओं में विकृति आती है तो भूमि की उष्माभूमि के परतों को तोड़ कर बाहर निकलती है और उसे हम ज्वालामुखी के नाम से पुकारते हैं जिसके कारण भूकम्प होता है।

यामक्रमेण भूकम्पो द्विजातीनामनिष्टदः।
अनिष्टदो क्षितीशानां सन्ध्ययोरुभयोरपि॥

याम क्रम से ब्राह्मणादि वर्गों के लिए भूकम्प अशुभ फलदायक होता है। जैसे-प्रथम प्रहर में ब्राह्मणों को, द्वितीय में क्षत्रियों को, तृतीय में वैश्यों को और चौथे प्रहर में शूद्रों को अशुभ फलदायक भूकम्प होता है। यदि दोनों सन्धियों में भूकम्प हो तो राजाओं को कष्ट होता है।

अर्यमाद्यानिचत्वारि दोन्द्वदिति भानि च।
वायव्यमण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पो भवेद्यदि॥
नृपसस्य-वणिग्वेश्याशिल्पवृष्टिविनाशदः।

उत्तराफाल्गुनी से चार नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती) अश्विनी, मृगशीर्ष और पुनर्वसु इन नक्षत्रों को 'वायव्यमण्डल' कहते हैं। वायव्यमण्डल में भूकम्प होने से, राजा, धान्य, व्यापारी, वेश्या, शिल्पज्ञ और वर्षा का विनाश होता है।

पुष्यद्विदैवभरणी पितृभाग्यानलाऽजपात्॥
आग्नेयमण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पोभवेद्यदि।
नृपवृष्ट्यर्घनाशाय हन्ति शाम्बरटंकणान्॥

पुष्य, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपदा ये नक्षत्र अग्निमण्डल में आते हैं। इनमें भूकम्प होने से राजा का विनाश, अवर्षण, महँगाई रहे तथा शाम्भर, नमक और सुहागा इत्यादि वस्तु महगी होती है।

अभिजिद्धातृ-वैश्वेन्द्रवसुवैष्णवमैत्रभम्।
वासवं मण्डलं त्वेतदस्मिन् कम्पो भवेद्यदि॥
राजनाशाय कोपाय हन्ति माहेयदर्दुरान्।

अभिजित्, रोहिणी, उत्तराषाढ़, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, और अनुराधा ये नक्षत्र वासवमण्डल के हैं। इनमें भूमिकम्प होने से राजा का नाश तथा राजाओं में परस्पर वैर बढ़ता है। माहेय तथा दर्दुर देश का नाश होता है।

मूलाहिर्बुध्न्यवरुणाः पौष्णमाद्राहिभानि च॥
वारुणं मण्डलं त्वेतदस्मिन् कम्पो भवेद्यदि।
राजनाशकरोहन्ति पौण्ड्रचीनपुलिन्दकान्॥

मूल, उत्तराभाद्रपद, शतभिषा, रेवती, आर्द्रा और आश्लेषा ये नक्षत्र वरुणमण्डल के हैं। इनमें भूकम्प होने से राजा का नाश होता है तथा पौण्ड्र, चीन और पुलिन्द देशों का नाश होता है।

प्रायेण निखिलोत्पाताः क्षितीशानामनिष्टदाः।
षड्भिर्मासैश्च भूकंपो द्वाम्यां दाहफलप्रदः॥
अनुक्तः पंचभिर्मासैस्तदानीं फलदं रजः।

प्रायः सभी उत्पात में विशेषकर राजाओं को अशुभ कहा गया है। भूकम्प का फल 6 महीने में होता है और दो महीने में दिग्दाह का फल होता है। रज तथा अन्य उत्पात का फल पाँच महीने में प्राप्त होता है।

4.5 आपदाओं की शान्ति के उपाय

फलपाको भवेदष्टमासैस्तद्वत्सरेण वा।
उत्पातानामथैतेषां शान्तिं वक्ष्ये प्रयत्नतः॥

उत्पातों के फल का परिणाम आठ महीने में अथवा एक वर्ष में मिलता है। अतएव उन उत्पातों के शान्ति को प्रयत्नपूर्वक मैं कहूँगा।

भौमं शान्त्या शमं याति मार्दवं त्वन्तरिक्षजम्।
दिव्यं होमान्नगोभूमिदानैस्तत्कोटिहोमतः॥

भूमि सम्बन्धी उत्पात तो शान्ति से शमित अर्थात् नष्ट हो जाते हैं जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मन्द पड़ जाते हैं अर्थात् कम हो जाते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात हवन, अन्न, गाय, भूमि के दान से तथा करोड़ों हवन से।

महोपहाराद् रुद्रस्य गोदोहात्तत्पुरःसरम्।
अलंकृते क्षितितले यावत्क्षीरप्लवं भवेत्॥

भगवान रुद्र के अनेक प्रकार के पूजन से तथा उनके समक्ष गोदोहन से पृथ्वी का अलंकार तब तक करें जब तक दूध स्वतः बहने न लगे।

अपि दिव्यं शमं यान्ति किं पुनस्त्वितरद्वयम्।
अकृत्वा शान्तिकं राजा दुखाम्भोधौ निमज्जति॥

दिव्य उत्पात भी शमन हो जाते हैं। तो फिर इससे अतिरिक्त जो दो अर्थात् भूमि एवं अन्तरिक्ष उत्पात हैं। वे तो निश्चित ही शमित हो जायेंगे बिना शान्ति कर्म किए राजा इन उत्पातों के होने पर दुःखरूपी समुद्र में डूब जाता है।

बुद्ध्वा देवविकारं शुचिः पुरोधाख्यहोषितः स्नातः।
स्नानकुसुमानुलेपनवस्त्रैरभ्यर्चयेत्॥

मधुपर्केण पुरोधा भक्ष्यैर्बलिभिश्च विधिवदुपतिष्ठेत्।
स्थालीपाकं जुहुयाद्विधिवन्मन्त्रैश्च तल्लिङ्गैः॥

देवताओं के विकृतियों को जानकर पवित्र, संयत, स्नान किया हुआ, तीन दिन तक व्रती पुरोहित को विकारयुक्त देवताओं को स्नान, चन्दन, अक्षत, पुष्प, वस्त्र, दही मिला हुआ भोजन पदार्थ और बलि आदि से विधि पूर्वक पूजन तथा स्थालीपाक (चरु) से तत्तद् देवता का मन्त्र पढते हुए अग्नि में आहुति प्रदान करनी चाहिए।

इति विबुधाविकारे शान्तयः सप्तरात्रं
द्विजविबुधगणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च।

विधिवदवनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां
भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः॥

पूर्वोक्त देव विकार होने पर राजा सात रात्रि तक ब्राह्मण और देवताओं की पूजा, गीत, नृत्य, रात्रि भजन- जागरण आदि उत्सव का आयोजन करे। इस प्रकार जिन राजाओं द्वारा किया जाता है, उनको पूर्वोक्त शान्ति और दक्षिणा से रुद्ध उत्पातों का अनिष्ट फल नही लगता।

मन्त्रैराग्नेयैः क्षीरवृक्षात् समिद्भिर्होतव्योऽग्निः सर्षपैः सर्पिषा च।
अग्न्यादीनां वैकृते शान्तिरेवं देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्यः॥

अग्नि विकार जनित जो अशुभ फल कहे गये हैं उनकी शान्ति के लिए आक की लकड़ी, घृत, सरसों से अग्नि में हवन करना चाहिए, तथा ब्राह्मणों को सुवर्ण एवं दक्षिणा देनी चाहिए, ऐसा करने से अग्नि के द्वारा बताए गए अशुभ फलों की शान्ति होती है।

हस्तैः षोडशभिः काय्यं चतुरस्त्रं समन्ततः।
मण्डपं याज्ञिकैर्वृक्षैरथवा वनदारुभिः॥

सोलह हाथ का चारों ओर से चैकोर मण्डप बनाना चाहिए। वह मण्डल याज्ञिक वृक्षों अथवा वन के वृक्षों द्वारा बनवाना चाहिए।

चत्वारिसमायुक्तं तोरणाद्यैरलंकृतम्।
हस्तैश्चतुर्भिस्तन्मध्ये कुण्डं कार्यं समन्ततः॥

चार दरवाजों से युक्त तोरण आदि के द्वारा सुशोभित चारों ओर से चार हाथों के मध्य में कुण्ड बनाना चाहिए।

खातं हस्तचतुर्भिश्च वप्रत्रयसमन्वितम्।
षडंगुलोन्नतस्त्वाद्यो द्वादशाङ्लविस्तृतः॥

चार हाथ प्रमाण से खात करे। जिसमें तीन ओर से मिट्टी की दीवार से युक्त करें। छः अंगुल ऊँचा तथा बारह अंगुल विस्तार बनावें।

दशाङ्लोन्नतो मध्यो ह्यष्टाङ्लसुविस्तृतः।
चतुर्दशाङ्लोत्सेधश्चतुरंगुलविस्तृतः॥

मध्य में दस अंगुल ऊँचा और आठ अंगुल विस्तृत करे और चैहद अंगुल चैकोर तथा चार अंगुल विस्तृत करें।

तृतीयवप्रः कत्र्तव्यो योनिश्चैका तु पश्चिमे।
चतुर्दशाङ्लैर्दीर्घा चोन्नता षोडशाङ्लैः॥

तीसरी दीवार बनावें। और पश्चिम दिशा में एक योनि का निर्माण करें। चैदह अंगुल दीर्घ तथा सोलह अंगुल उन्नति करें।

हीनाधिका न कर्तव्या विस्तारः षड्भिरंगुलैः।
कुण्डस्य लक्षणं त्वेकं कोटिहोमे तु सर्वदा॥

कम या अधिक की वेदी नहीं बनानी चाहिए। इसका विस्तार छः अंगुल का होना चाहिए। यही एक कुण्ड का लक्षण कहा गया है। इसमें सदैव कोटि हवन किया जा सकता है।

ईशान्यां वेदिका कार्या सार्द्धहस्तप्रमाणतः।
उन्नता विस्तृता कार्या प्रागुदक्प्रवणा शुभा॥

डेढ़ हाथ के प्रमाण से ईशान कोण में वेदी का निर्माण करना चाहिए। यह वेदी ऊँची और

विस्तृत करना चाहिए तथा पूरब और उत्तर दिशा में ढाल शुभ कहा गया है।

सर्वदेवमयी त्वाद्या शिवपूजापुरःसरम्।
ग्रहांस्तानर्चयेत्तत्र पूर्वोक्तविधिना ततः॥

सर्वप्रथम सर्वदेवमयी इस वेदिका में भगवान शंकर की पूजा के सहित पूर्वोक्त विधि के द्वारा ग्रहों का वहां पूजन करना चाहिए।

पलाशसमिदाज्यान्नैर्मुखान्तेऽष्टशतं पृथक्।
अघोरमन्त्रेण ततो ग्रहहोमं च कारयेत्॥

पलाश की लकड़ी, घी, अन्न के द्वारा अन्त में आठ सौ अलग-अलग अघोर मन्त्र के द्वारा पुनः ग्रह हवन को करना चाहिए।

तिलहोमं व्याहृतिभिर्घतोक्तं जुहुयात्ततः।
द्वारे हि जापकैः स्वस्ववेदपारायणं क्रमात्॥

पुनः व्याहृतियों के द्वारा तिल का हवन तथा पुनः घी से हवन करना चाहिए। क्रमशः प्रत्येक द्वार पर जप करने वालों के द्वारा जो अपने-अपने वेद में पारंगत हो उनके द्वारा।

चमकं नमकं सूक्तपुरुषोक्तांगजापकैः।
होमं नवभिराचार्यैः कार्यं तद्ब्रह्मणा सह॥

चमक, नमक द्वारा तथा पुरुष सूक्त द्वारा कहे गये अंग जापकों के साथ नौ आचार्यों द्वारा तथा ब्रह्म के सहित हवन करना चाहिए।

शिवविष्णोः कथालापैनिशेषं नयेत्ततः।
एवं यावत्कोटिहोमस्तावत्कार्यमतन्द्रिभिः॥

भगवान शंकर एवं विष्णु के कथा के कहने-सुनने में शेष दिन को बिता देना चाहिए। इस प्रकार आलस्यरहित होकर कोटि हवन को पूर्ण करना चाहिए।

नैवेद्यान्ते ततः पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम्।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बन्धुभिः॥

नैवेद्य के अन्त में पुनः शान्ति वाचनपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करायें उसके पश्चात भाइयों के साथ स्वयं भी भोजन करें।

तदर्दू वा तदर्द्ध वा लक्षहोममथापि वा।
काय्र्यं दोषानुसारेण वित्तशाठ्यविवर्जितः॥

उसका आधा अथवा उसका आधा अथवा लक्षहोम अर्थात् पचास लाख या पचीस लाख अथवा एक लाख दोष के अनुसार धन की कंजूसी न करता हुआ हवन कराना चाहिए।

होमान्ते दक्षिणां दद्याच्चतुर्विंशतिऋत्विजान्।
प्रतिद्विजमलंकारं सार्द्धनिष्कशतद्वयम्॥

हवन के अन्त में दक्षिणा देनी चाहिए। चैबीस ऋत्विजों को दक्षिणा देनी चाहिए। प्रत्येक ब्राह्मण

को ढाई सौ निष्क तथा अलंकार से सम्मानित करें।

तदर्द्ध वा तदर्द्ध वा दोषवित्तानुसारतः।
एवमेव यशःकामैर्नृपैः कुर्याच्च भक्तितः।

उसका आधा अथवा उसका आधा अथवा दोष अथवा धन के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार यश की कामना करने वाले राजा के द्वारा भक्तिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न करना चाहिए।

व्रीहिभिश्चायुरर्थी चेत्सर्वकामी तिलैश्च सः।
उक्ता साधारणा शान्तिरुत्पातानामतः परम्।।

आयु की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति को धान (चावल) से तथा सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति के लिए तिल से हवन करना चाहिए। यहां तक साधारण शान्ति को कहकर इसके आगे उत्पात नाम से शान्ति को कह रहे हैं।

पूर्वोक्तलक्षणे कुण्डे स्थापयेच्च हुताशनम्।
मुखान्ते जुहुयादग्निं मन्त्रैरष्टसहस्त्रकम्।।

पहले कहे गये लक्षण वाले कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके मुखान्त में अग्नि में आठ हजार मन्त्रों के द्वारा आहुति देनी चाहिए।

क्षीरवृक्षसमिश्च सर्षपैश्च पृथक् पृथक्।
तिलहोमं व्याहृतिभिब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।।

दूध वालें वृक्षों की समिधा से, तथा अलग-अलग सरसों से या तिल से व्याहृतियों के द्वारा होम करके पुनः ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

एवं यः कुरुते भक्त्या तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः।।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा शेषं पूर्ववदाचरेत्।

जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करता है वह इस दोष से मुक्त हो जाता है। ऋत्विजों को धन की कंजूसी छोड़कर दक्षिणा देनी चाहिए। एक रात्रि या तीन रात्रि पर्यन्त शेष कर्मों को पूर्ववत करना चाहिए।

स्त्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य छत्रं विधायोपरि पादपस्य।
कत्वाशिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र षडेव होमाः।।

पायसेन मधुनापि भोजयेद् ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपतिः।
मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते हितार्थिभिः।।

ऊपर बताए गए वृक्षों के द्वारा उत्पातों के निवारणार्थ प्रयत्नपूर्वक यथासम्भव वृक्षों का अभिषेक करना चाहिए। तथा सुगन्धित द्रव्य, गन्ध, फूल, माला, वस्त्र, धूप, से पूजित विकारयुक्त वृक्ष के ऊपर छाता तथा उपहार रख कर एकादश रुद्रों के मन्त्रों का जप करना चाहिए। और रुद्रेभ्यः स्वाहा इस मन्त्र से छः बार हवन करें, घृत युक्त पायस से ब्राह्मणों को

करायें साथ वृक्षविकारजन्य उत्पात से निवृत्ति के लिए भूमि दान करने का भी वर्णन प्राप्त होता है।

विकृतकुसुमं फलं वा ग्रामदथवा पुराद्वहिः कार्यम्।
सौम्योऽत्र चरुः कार्यो निर्वाप्यो वा पशुः शान्त्यै॥

सस्ये च दृष्ट्वा विकृतिं प्रदेयं तत्क्षेत्रमेव प्रथमं द्विजेभ्यः।
तस्यैव मध्ये चरुमत्र भौमं कृत्वा न दोषं समुपैति तज्जम्॥

फल तथा पुष्पों के द्वारा उत्पात की शान्ति के लिए आचार्य कहते है कि विकार युक्त पुष्प और फलों को ग्राम या सहर से बाहर कर देना चाहिए तथा सोम देव की चरु बनानी चाहिए और शान्ति के लिए बकरे का दान भी करना चाहिए। यदि धान्यों के बताए गए पूर्वोक्त विकार में से कोई विकार हो तो उस विकार युक्त क्षेत्र का भी ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए और उसी क्षेत्र के मध्य पार्थिव चरु बनाने से भूमि से उत्पन्न दोष राजा को अथवा राज्य को नही लगता अर्थात् दोष का समन हो जाता है।

सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागःस्मृतो वृष्टिविकारकाले।
धान्यान्नगोकाञ्जनदक्षिणाश्च देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम्॥

सूर्य, चन्द्रमा, मेघ और वायु के द्वारा जनित विकार जन्य उत्पात के समय यज्ञ करना चाहिए तथा शाली धान्य, भोज्यान्न, गाय और सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मणों को देनी चाहिए। ऐसा करने से उत्पात जन्य पाप की शान्ति होती है।

सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वरुणैर्मन्त्रैः।
तैरेव च जपहोमं शममेवं पापमुपयाति॥

जल में विकार होने पर वरुण के मन्त्र से पूजा, जप और हवन करना चाहिए। ऐसा करने से उत्पन्न होने वाले उत्पातों का विनाश होता है।

नार्यः परस्य विषये त्यक्तव्यास्ता हितार्थिनी।
तर्पयेच्च द्विजान् कामैः शान्तिं चैवात्र कारयेत्॥

चतुष्पदाः स्वयूथेभ्यस्त्यक्तव्याः परभूमिषु।
नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा तु विनाशयेत्॥

अपने साथ-साथ देश एवं राज्य का हित चाहने वाले व्यक्ति को विकारयुक्त स्त्रियों का शान्ति पूजनादि करवाना चाहिए तथा ब्राह्मणों को प्रसन्न करना चाहिए। विकार युक्त चतुष्पदों को समूह से अलग कर अन्य नगर में रखना चाहिए। जिससे उत्पात का नाश होता है।

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि जिन आपदाओं का सम्बन्ध साक्षात प्रकृति से जुड़ा हो, उसे प्राकृतिक आपदा कहेंगे। इसका क्षेत्र भी प्रकृति की तरह ही अतिविस्तृत है। सम्प्रति इसे 'डिजास्टर' के नाम से जाना जाता है। आपदा-प्रबन्धन के नाम से

इसका अध्ययन- अध्यापन भी आधुनिक तरीके से कराया जा रहा है। इसके अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, पर्यावरण सम्बन्धित समस्यायें, उल्कापातादि, धूमकेतु, वृक्षों से सम्बन्धित, राष्ट्र एवं विश्व से सम्बन्धित नाना प्रकार की आपदायें आदि इत्यादि विषय आते हैं। संहिता ज्योतिष में उक्त सभी विषयों को मुख्यत: तीन उत्पात- दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पातों में विभक्त किया है। आपदाओं के बारे में आचार्य वशिष्ठ स्वग्रन्थ 'वशिष्ठ संहिता' में बताते हुए कहते हैं कि प्रकृतेरन्यत्वमुत्पात प्रकृति का अन्यत्व अर्थात् विपरीत होने की उत्पात संज्ञा कही गयी है। प्रकृति के बदलने पर भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य, ये तीन प्रकार के उत्पात होते हैं। जैसा कि समाससंहिता में भी आचार्य कहते है- **यः प्रकृति विपर्यासः सर्वः संक्षेपतः स उत्पातः, क्षितिगगनदिव्यजातो यथोत्तरं गुरुतरो भवति।** मनुष्यों में जब विनम्रता नहीं रहती, पाप करने लगते हैं। और जब पाप बहुत में बढ़ जाता है तो इससे प्रकृति में उपद्रव होने लगता है, इसी उपद्रव को आचार्यो ने उत्पात संज्ञा दी है। अधर्म से, असत्य से, नास्तिकता से, अति लोभ से, मनुष्यों के अनाचार से, नित्य ही उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उस उपद्रव वश तीन प्रकार के शोक और दुःख देने वाले उत्पात उत्पन्न होते हैं। दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भूमिजन्य भयंकर रूप वाले विकार कहे गये हैं। ग्रह नक्षत्रों से उत्पन्न और केतुओं से उत्पन्न विकार दिव्य संज्ञक कहे गये हैं। अर्थात् सूर्य आदि ग्रह और अश्विनी आदि नक्षत्रों के विकारयुक्त होने से जो उत्पात उत्पन्न होता है, उसे दिव्य संज्ञा दी गयी है। निर्घात, परिवेश, उल्का, इन्द्रधनुष और ध्वजा लोहित, ऐरावत, ऊँट, अश्व, कबन्ध तथा परिघ आदि से उत्पन्न हुए उत्पातों को अन्तरिक्ष उत्पात कहा जाता है। पृथ्वी के चलायमान होने से अथवा चर वस्तु के स्थिर एवं स्थिर वस्तु के चलायमान होने पर भूमि सम्बन्धी उत्पात की संज्ञा दी गयी है। भौम उत्पात तुच्छ अर्थात् स्वल्प फल देने वाले होते हैं। जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात सम्पूर्ण फल देते हैं। वह तीन महीने, छः महीने अथवा एक वर्ष में अवश्य फल प्राप्त हो जाते हैं।

4.7 शब्दावली

प्राकृतिक – प्रकृति से जुड़ा

अतिवृष्टि – अत्यधिक वर्षा

भूकम्प – पृथ्वी का कम्पन

अनावृष्टि – अत्यल्प वर्षा

दिशा – प्राच्यादि १० दिशायें होती है।

दिव्य – प्रधान तीन उत्पातों में से एक

अन्तरिक्ष – प्रधान तीन उत्पातों में एक

भौम – प्रधान तीन उत्पातों में एक

उत्पात – आपदा

4.8 सन्दर्भग्रन्थ

1. वशिष्ठ संहिता
2. बृहत्संहिता

3. नारदसंहिता
4. गर्गसंहिता
5. समाससंहिता

4.9 बोधप्रश्न

1. प्राकृतिक आपदाओं से क्या तात्पर्य है?
2. दिव्य उत्पात का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
3. बृहत्संहिता के अनुसार भौम उत्पात का प्रतिपादन करें।
4. अन्तरिक्ष उत्पात का विस्तृत निरूपण कीजिये।
5. नारद संहिता के अनुसार भूकम्प का लक्षण लिखिये।
6. अग्नि के द्वारा आपदाओं का ज्ञान कैसे करते है?

इकाई 5 कूर्मचक्र

इकाई की संरचना

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 कूर्मचक्र का सामान्य परिचय

5.4 कृत्तिकादि सत्ताईस नक्षत्रों के वर्ग विभाजन-

5.4.1 कृत्तिकादि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

5.4.2 आश्लेषादि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

5.4.3 स्वाती आदि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

5.4.4 शतभिषादि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.8 बोध प्रश्न

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- बता सकेंगे कि कूर्मचक्र किसे कहते है।
- समझा सकेंगे कि कौन से नक्षत्र के वर्ग में कौन सा देश आता है।
- कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्र के वर्ग को समझा सकेंगे।
- समझा सकेंगे कि किस दिशा में कौन से नक्षत्र का वर्ग होता है।

5.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई सप्तम पाठ्यक्रम संहिता ज्योतिष के चतुर्थ खण्ड दकार्गलादि विचार की पांचवीं इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - कूर्मचक्र। इससे पूर्व आप सभी ने प्राकृतिक आपदाओं से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत ही कूर्मचक्र के विषय में अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं। कूर्मचक्र से तात्पर्य है- नक्षत्र एवं राशियों के खण्ड का चक्र। इस पाठ में सत्ताइस नक्षत्रों को नव खण्ड में विभाजित करके प्रत्येक वर्ग (खण्ड) में कृत्तिकादि तीन तीन नक्षत्र आते है। इन नौ वर्गों में मेरु से दक्षिण भाग में स्थिर भारतवर्ष को मध्य स्थान में मानकर अन्य देशों को पूर्वादि क्रम से व्यवस्थित माना गया है। तथा उन दिशाओं मे पडने वाले देशों के लिए पाप ग्रह आदि अशुभ लक्षणों से पीड़ित नक्षत्र क्रम से उक्त अपने वर्ग (खण्ड) के देशों को पीड़ित करते है तथा शुभ

ग्रह आदि शुभ लक्षणों से युक्त नक्षत्र अपने देशों का अभ्युदय करते है। अत: आइये संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत कूर्मचक्र के द्वारा नक्षत्रों का विभाजन करके तत्तत्प्रदेश में शुभाशुभ फलों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

5.3 कूर्मचक्र का सामान्य परिचय

यह पृथ्वी कूर्म पर प्रतिष्ठित है। ज्योतिष शास्त्र में कूर्मचक्र का अर्थ है- नक्षत्र एवं राशियों के वर्ग (हिस्सा) का चक्र। कृत्तिकादि सत्ताईस नक्षत्र एवं मेषादि द्वादश राशियों के कूर्म (वर्ग) तथा कूर्म फल का वर्णन समस्त संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। आइए सर्वप्रथम नक्षत्रों के वर्ग करने के नियम को जान लेते है-

प्राङ्मुखस्य तु कूर्मस्य नवाङ्गेषु धरामिमाम्।
विभज्य नवधाखण्डमण्डलानि प्रदक्षिणम्॥

यह कूर्म पूर्व की ओर मुख करके स्थित है। अतः मेदिनी ज्योतिष में शुभाशभ फल जानने के लिए कूर्म रूपी भारत वर्ष के नौ विभाग(खण्ड) या मण्डल मान्य किये गये है। इन विभागों को प्रदिक्षण क्रम से विभाजित किया गया है।

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा।
भारतवर्षे मध्यप्रागादिविभाजिता देशाः॥

कृत्तिकादि सत्ताईस नक्षत्रों को नौ वर्गों में विभाजित करने से प्रत्येक वर्ग में कृत्तिकादि तीन-तीन नक्षत्र आते है। इन नौ वर्गों में मेरु से दक्षिण भाग में स्थिर भारतवर्ष को मध्य स्थान में मानकर अन्य देशों को पूर्वादि क्रम से व्यवस्थित माना गया है। मार्कण्डेय पुराण में नक्षत्र कूर्म के फल के विषय में वर्णन है कि-

एतत्पीडास्वमी देशाः पीड्यन्ते ये क्रमोदिताः।
यान्ति चाभ्युदयं विप्र ग्रहैः सम्यग्व्यवस्थितैः॥

कृत्तिकादि सत्ताईस नक्षत्र पाप ग्रह आदि अशुभ लक्षणों से पीड़ित नक्षत्र मध्य, पूर्व, दक्षिण आदि क्रम से उक्त अपने वर्ग के देशों को पीड़ित करते है तथा शुभ ग्रह आदि शुभ लक्षणों से युक्त नक्षत्र अपने देशों का अभ्युदय करते है।

संहिता ग्रन्थों में कूर्म (वर्ग) चक्र

5.4 कृत्तिकादि सत्ताईस नक्षत्रों के वर्ग विभाजन

कृत्तिका रोहिणी सौम्या मध्यदेशस्य निर्दिशेत्।
पीडिते त्रितये तस्मिन् मध्यदेशः प्रपीड्यते॥

आर्द्रापुनर्वसू पुष्यः पूर्वस्यां तु भवेद्दिशि।
पीडिते त्रितये तस्मिन् पूर्वदेशः प्रपीड्यते॥

सार्पं पितृ तथा भाग्यमनलस्य दिशि स्मृतम्।
पीडिते त्रितये तस्मिन्नाग्नेयी पीड्यतेऽथ दिक्॥

आर्यम्णमथ हस्तं च त्वाष्ट्रं स्याद्दिशि दक्षिणे।
पीडिते त्रितये तस्मिन् दक्षिणा दिक् प्रपीड्यते॥

स्वातिर्विशाखा मैत्रं च नैर्ऋत्यां दिशि कीर्त्तितम्।
पीडिते त्रितये तस्मिन् नैर्ऋती पीड्यतेऽथ दिक्॥

ज्येष्ठा मूलं च तोयं च वरुणस्य दिशि स्मृतम्।
पीडिते त्रितये तस्मिन् वारुणी पीड्यतेऽथ दिक्॥

वायव्यां दिशि निर्दिष्टा वैश्वश्रवणवासवाः।
पीडिते त्रितये तस्मिन्नैशानी दिक् प्रपीड्यते॥

कृत्तिकादि नक्षत्रों को क्रम से कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रों को मध्यदेश का कहना चाहिये। इन तीनों नक्षत्रों के पीड़ित होने पर मध्यदेश पीड़ित होते हैं। आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र पूर्व दिशा में हैं। इन तीनों नक्षत्रों के पीड़ित होने पर पूर्व दिशा में स्थित देश पीड़ित होते हैं। आश्लेषा, मघा और पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र अग्निकोण में कहे गये हैं। इन तीनों नक्षत्रों के पीड़ित होने से अग्निकोण में स्थित देश पीड़ित होते हैं। उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा नक्षत्र दक्षिण दिशा में हैं, इन तीनों नक्षत्रों के पीड़ित होने पर दक्षिण दिशा पीड़ित होती है। स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्र नैर्ऋत्य कोण में कहे गये हैं; इन तीनों नक्षत्रों के पीड़ित होने पर नैर्ऋत्य दिशा पीड़ित होती है। ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पश्चिम दिशा में कहे गये हैं। इन तीनों नक्षत्रों के पीड़ित होने पर पश्चिम दिशा पीड़ित होती है। उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र वायव्य दिशा में कहे गये हैं। इन तीनों नक्षत्रों के पीड़ित होने पर वायव्य दिशा में स्थित देश पीड़ित होते हैं । यहाँ उत्तर दिशा और ईशान कोणस्थ देशों के नक्षत्रों का उल्लेख नहीं है, जो कि मूल में त्रुटि है; परन्तु अन्य वचनों से स्पष्ट है कि शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों की दिशा उत्तर है तथा रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्र ईशान कोण के हैं; अत: इन नक्षत्रों के पीड़ित होने पर क्रमश: उत्तर दिशा एवं ईशान कोण में स्थित देशों को पीड़ा होती है। आइए अब नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

5.4.1 कृत्तिकादि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

कुशस्थलं जयन्ती च उपज्योतिष्मती पुरी।
मध्यमाश्च कलिङ्गाग्रकपित्थाः शूरसेनकाः॥

आश्वत्था गुडनीपाश्च मेदाः काञ्चनकास्तथा।
मन्दारमत्स्यकालिङ्गाः कैकेया कुचरा अपि॥

गौरग्रीवाः सपाखण्डाः पारियात्रकमेकलाः।
सारस्वता माथुराश्च पाञ्चाला यामुनास्तथा॥

कुरुक्षेत्रं कालकोटी तथा स्याद्धस्तिनापुरम्।

पाण्डवाः पाण्डुशाल्वाश्च उज्जिहाननिवासिनः॥

कुशस्थल, जयन्ती, उपज्योतिष्मतीपुरी, कलिङ्गाग्र, कपित्थ, शूरसेन, आस्वस्थ, गुड़नीप, मेद, काञ्चन, मन्दार, मत्स्य, कालिङ्ग, कैकेय, कुचर, गौरग्रीव, पाखण्ड, पारियात्र, मेकल, सारस्वत, माथुर, पाञ्चाल, यामुन, कुरुक्षेत्र, कालकोटि, हस्तिनापुर, पाण्डव, पाण्डु, शाल्व और उज्जिहान के निवासी कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (मध्यदेश) भारतवर्ष में स्थित हैं। यह मत काश्यप ऋषि के अनुसार है। मार्कण्डेय पुराण में वर्णित कृत्तिकादि तीन नक्षत्रों के देश को जान लेते हैं-

भद्रारिमेदमाण्डव्यशाल्वनीपास्तथा शकाः।
उज्जिहानास्तथा वत्सघोषसंख्यानयामुनाः॥

मत्स्याः सारस्वता वत्साः शूरसेनाः समाथुराः।
धर्मारण्या ज्यौतिषिका गौरग्रीवा गजांशकाः॥

वैदेहकाः सपाञ्चालाः साकेताः कङ्कमारुताः।
कालकोट्यः सपाखण्डाः पारियात्रनिवासिनः॥

कापिष्ठलाः कुकुराद्यास्तथैवोदुम्बरा जनाः।
गजाह्वयाश्च कूर्मस्य जलमध्यनिवासिनः॥

भद्रा, अरिमेद, माण्डव्य, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, वत्स, घोष, संख्यान, यामुन, मत्स्य, सारस्वत, वत्स, शूरसेन, माथुर (मथुरा), धर्मारण्य, ज्यौतिष, गौरग्रीव, गजांश, विदेह, पाञ्चाल, साकेत, कङ्क, मारुत, कालकोटि, पाखण्ड, पारियात्रनिवासी, कपिष्ठल, कुकुरदि, उदुम्बर, गजाह्व और कूर्मदेश के जलमध्य के निवासी – यह भारतवर्ष के कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों का वर्ग (मध्य भाग) है। अब आगे के क्रम में बढ़ते हुए बृहत्-संहिता में वर्णित कृत्तिकादि तीन नक्षत्रों के वर्ग को जान लेते है-

भद्रारिमेदमाण्डव्यशाल्वनीपोज्जिहानसंख्याताः।
मरुवत्सघोषयामुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः॥

माथुरकोपज्यौतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च।
गौरग्रीवोद्दैहिकपाण्डुगुडाश्वत्थपाञ्चालाः॥

साकेतकङ्ककुरुकालकोटिकुकुराह्वपारियात्रनगाः।
औदुम्बरकापिष्ठलगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम्॥

भद्र, अरिमेद, माण्डव्य, शाल्व, नीप, उज्जिहान, संख्यात, मरु, वत्स, घोष, यामुन, सारस्वत, मत्स्य, माध्यमिक, माथुर, उपज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, गौरग्रीव, उद्दैहिक, पाण्डु, गुड, अश्वत्थ, पाञ्चाल, साकेत, कङ्क, कुरु, कालकोटि, कुकुर, पारियात्र, नग, औदुम्बर, कापिष्ठल और हस्तिनापुर – ये देश कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (भारतवर्ष के मध्य भाग) में स्थित हैं। अब कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देश के बारे में पाराशर ऋषि का भी मत देख लेते है-

अथ मध्यदेश आर्यावर्त्त इति च आख्यायते। तत्र जनपदाः
शूरसेनोद्दैहिकमद्राश्वत्थनीपकाञ्चनककौरवोत्तमज्यौतिषभद्रारिमेदमाध्यमिकशाल्वसा केतमत्स्यकपिष्ठलदौलेयमण्डव्याः।
पाण्डुनगरगौरग्रीवपारियात्रमरुकुकुरौदुम्बरयामुनगजाह्वौज्जिहान कालकोटिमथुरोत्तरदक्षिणपाञ्चालधर्मारण्यकुरुक्षेत्रसारस्वताः।

पृथ्वी का मध्य भाग आर्यावर्त्त को कहा जाता है। इसमें शूरसेन, उद्दैहिक, मद्र, अश्वत्थ, नीप, काञ्चन, कौरव, उत्तमज्यौतिष, भद्र, अरिमेद, माध्यमिकशाल्व, साकेत, मत्स्य, कपिष्ठल, दौलेय, माण्डव्य, पाण्डुनगर, गौरग्रीव, पारियात्र, मरु, कुकुर, औदुम्बर, यामुन, गजाह्व, उज्जिहान, कालकोटि, मथुरा के उत्तर और दक्षिण जनपद, पाञ्चाल, धर्मारण्य, कुरुक्षेत्र और सारस्वत देशों के जनपद मध्य भाग में स्थित हैं। ये मध्य भाग कृत्तिकादि तीन नक्षत्रों के अन्तर्गत आता है।

आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य-

पूर्वे मालवका भद्रा मिथिला पौण्ड्रवर्धनम्।
काशिकोशलसूक्ष्माश्च मागधा मेकलास्तथा।।

व्याघ्रवक्त्राः सूर्पकर्णा लौहित्यः शोण एव च।
प्राग्ज्यौतिषमहेन्द्रादिकिराताः क्षीरवासिनः।।

मालव, भद्र, मिथिला, पौण्ड्र, वर्धमान, काशी, कोसल, सूक्ष्म, मगध, मेकल, व्याघ्रमुख, सूर्पकर्ण, लौहित्य, शोण, प्राग्ज्यौतिष, महेन्द्रादि, किरात और क्षीरवासी आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (भारतवर्ष के पूर्व भाग) में स्थित हैं। यह मत काश्यप ऋषि का है। आइए अब मार्कण्डेय पुराण में वर्णित आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग को जानते है-

वृषध्वजोऽञ्जनश्चैव पद्माख्यो मलयाचलः।
सूर्पकर्णव्याघ्रमुखौ गुर्वर्कः कर्पटाशनः।।

तथा चान्द्रपुराश्चैव खशाः समगधास्तथा।
शिवयो मिथिला औड्रास्तथा वदनदन्तुराः।।
प्राग्ज्यौतिषाश्च लौहित्याः सामुद्राः पुरुषादकाः।

वृषध्वज, अञ्जन, पद्म, मलयाचल, सूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, गुर्वर्क, कर्पटाशन, चान्द्रपुर, खश, मगध, शिवि, मिथिला, औड्र, वदनदन्तुरा, प्राग्ज्यौतिष, लौहित्यसमुद्र और पुरुषाद- ये देश आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पूर्व दिशा) में स्थित हैं। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब हम बृहत्-संहिता में वर्णित आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों को जान लेते है-

अथ पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्वजपद्ममाल्यवद्गिरयः।
व्याघ्रमुखसुह्मकर्वटचान्द्रपुराः सूर्पकर्णाश्च।।

खशमगधशिविरगिरिमिथिलसमतटोड्राश्ववदनदन्तुरकाः।
प्राग्ज्यौतिषलौहित्यक्षीरोदसमुद्रपुरुषादाः।।

उदयगिरिभद्रगौडकपौण्ड्रोत्कलकाशिमेकलाम्बष्ठाः।
एकपदताम्रलिप्तककोशलका वर्धमानाश्च॥

अञ्जन, वृषध्वज, पद्म और माल्यवान् गिरि, व्याघ्रमुख, सुह्म, कर्वट, चान्द्रपुर, सूर्पकर्ण, खश, मगध, शिविरगिरि, मिथिला, समतट, ओड्र, अश्ववदन, दन्तुरक, प्राग्ज्यौतिष, लौहित्य नद, क्षीरोद समुद्र, पुरुषाद, उदयगिरि, भद्र, गौड़क, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रलिप्तक, कोशलक और वर्धमान- ये देश आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पूर्व दिशा) में स्थित हैं। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब हम पाराशर ऋषि के मत पर भी प्रकाश डाल लेते है-

अथ पूर्वस्यां च मालवशिविराञ्जनपद्मवृषध्वजोदयशिखरिदन्तुरकाः काशिकोशलमगधमिथिलामेकलोत्कलपुण्ड्रककर्वटसमतटोड्रगौडकभद्रद्रविडसुह्मता म्रलिप्तप्राग्ज्यौतिषवर्धमानवाजिमुखाम्बष्ठपुरुषादसूर्पिकर्णिकोष्ठाधिश्रोत्रव्याघ्रमुखलौ हित्यार्णवक्षीरोदार्णवमीनाशनकिरातसौवीरमहीधरा विवासिनैकपादोदयनिवासिनश्च।

मालव, शिवि, राञ्जन, पद्म, वृषध्वज, उदयगिरि, दन्तुरक, काशी, कोसल, मगध, मिथिला, मेकल, उत्कल, पुण्ड्र, कर्वट, समतट, उड्र (उड़ीसा), गौड़, भद्र, द्राविड़, सुह्म, ताम्रलिप्त, प्राग्ज्यौतिष, वर्धमान, अश्वमुख, अम्बष्ठ, पुरुषाद, सूर्पकर्ण, कोष्ठ, अधिश्रोत्र, व्याघ्रमुख, लौहित्य समुद्र, क्षीरसागर, मीनाशन, किरात, सौवीर, पर्वत, विवासी, एकपाद- ये देश आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पूर्व दिशा) में स्थित हैं।

5.4.2 आश्लेषादि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

आग्नेय्याशास्थिता ये च विन्ध्यं मलयपर्वतम्।
विदिशाश्च दशार्णश्च वङ्गा अङ्गाः कलिङ्गकाः॥

किष्किन्धाः शूकराः पुण्ड्राः पाठराश्च विदेहकाः।
क्षत्रियाः शवरा नग्ना नालिकेरार्णवाश्रिताः॥

आग्नेय दिशा में स्थित सभी देश, विन्ध्याचल और मलयपर्वत, विदिशा, दशार्ण, वङ्ग, अङ्ग, कलिङ्ग, किष्किन्धा, शूकर, नग्न, नालिकेर, समुद्र के आश्रित (तटप्रदेश) देश— ये सब आश्लेषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (आग्नेय दिशा) में स्थित हैं। यह मत काश्यप ऋषि का है। आइए अब आश्लेषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में जो जो देश मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है उसे भी जान लेते है-

कलिङ्गवङ्गजठराः कोशलाः शूलिकास्तथा।
चेदयश्चोर्ध्वकर्णाश्च मत्स्यान्ध्रा विन्ध्यवासिनः॥

विदर्भनालिकेराश्च चर्मद्वीपास्तथाऽलिकाः।
व्याघ्रग्रीवा महाग्रीवास्त्रैपुराश्मश्रुधारिणः॥

किष्किन्ध्यहिमकूटाश्च निषधाः कण्टकस्थलाः।
दशार्णा हरिका नग्ना निषदाः काकुलालकाः।
तथैव पर्णाः शवराः पादे वै पूर्वदक्षिणे॥

कलिङ्ग, वङ्ग, जठर, कोशल, शूलिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण, मत्स्य, आन्ध्र, विन्ध्यवासी, विदर्भ, नालिकेर, चर्मद्वीप, अलिक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी, किष्किन्धा, हिमकूट, निषध, कण्टकस्थल, दशार्ण, हरिक, नग्न, निषद, काकुलालक, पर्ण, शवर – ये देश पूर्व दक्षिण (आग्नेय) दिशा में आश्लेषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब हम बृहत्-संहिता में वर्णित आश्लेषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

आग्नेयां दिशि कोशलकलिङ्गवङ्गोपवङ्गजठराङ्गाः।
मैथिलविदर्भमत्स्यान्ध्रचैदिकाश्चोर्ध्वकर्णाश्च॥

वृषनालिकेरचर्मद्वीपा विन्ध्यान्तवासिनस्त्रिपुरी।
श्मश्रुधरहेमकूटव्यालग्रीवा महाग्रीवाः।

किष्किन्ध्यकण्टकस्थलनिषादराष्ट्राणि पुरिकदाशार्णाः।
सह नग्नपर्णशवरैराश्लेषाद्ये त्रिके देशाः॥

कोशल, कलिङ्ग, वङ्ग, उपवङ्ग, जठराङ्ग, मैथिल, विदर्भ, मत्स्य, आन्ध्र, चैदिक, ऊर्ध्वकर्ण (पाठान्तर से ऊर्ध्वकण्ठ), वृष, नालिकेर और चर्मद्वीप, विन्ध्याचल के समीप देशवासी, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्धा, कण्टकस्थल, निषादराष्ट्र, पुरिक, दशार्ण, नग्नशवर, पर्णशवर- ये सब देश आग्नेय दिशा में आश्लेषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं। आइए अब पाराशर ऋषि के द्वारा वर्णित आश्लेषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों को जान लेते है-

अथ प्राग्दक्षिणस्यां विन्ध्यातटवासिनश्चेदिवसतिदशार्णाङ्गबङ्गोपबङ्गकलिङ्ग-जठरपुण्ड्रकशूलिकविदर्भनग्नपर्ण-कशवरकाश्च। क्षत्रपुरपूरिककण्टस्थलवृषद्वीपकोशलोर्ध्व-कर्णोड्रचार्मत्वग्लूतकाकचारुहेमकूटव्यालग्रीवमहाग्रीवश्मश्रुधरनालिकेरद्वीपकिष्कि न्धाधिवासिनः।

विन्ध्य पर्वत एवं उसके तटवासी, चेदि, वसति, दशार्ण, अङ्ग, वङ्ग, उपवङ्ग, कलिङ्ग, जठर, पुण्ड्रक, शूलिक, विदर्भ, नग्न, पर्णक, शवरक, क्षत्रपुर, पूरिक, कण्टस्थल, वृषद्वीप, कोशल, ऊर्ध्वकर्ण, चार्म, त्वक्, लूत, काक, चारु, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव, श्मश्रुधर, नालिकेर द्वीप, किष्किन्धा- इन देशों के निवासी आश्लेषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (आग्नेयी दिशा) में स्थित हैं।

उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा-

याम्ये माहेन्द्रमलयविन्ध्यं च कुसुमाकरम्।
स्वमालिनी स्त्रीराष्ट्रं च धान्यं दशपुरन्दरा॥

अवन्ती दर्पणं चैव कर्कोटकवनं तथा।
कौन्तमार्गणकोपारा दण्डकारण्यमेव च॥

प्रवालं मौक्तिकं शङ्खं वैडूर्यं ताम्रधातवः।
ऋष्यमूकगिरी रम्यं तापसाश्रममेव च॥

कोङ्कणं चित्रकूटं च मरुचीपट्टनं तथा।
पट्टनं बलदेवस्य कार्मणेयकमेव च॥

नासिका चैव गोनर्दकर्णाटद्रविडानि च।
काकुलाङ्गलकोटिश्च निद्रा पाञ्चनदाश्रिताः॥

वैखण्डं कालेयं मालं सूर्पावर्त्तं कुजावहम्।
तथा भोगवती चेति विख्याता दक्षिणा दिशि॥

माहेन्द्र, मलय और विन्ध्य पर्वत, कुसुमाकर, स्वमालिनी, स्त्रीराष्ट्र, धान्य, दशपुरन्दर, अवन्ती, दर्पण, कर्कोटकवन, कौन्त (कुन्तल), मार्गण, कोपार, दण्डकारण्य, प्रवाल, मौक्तिक, शङ्ख, वैदूर्य और ताम्र आदि धातुओं के उत्पत्तिस्थान, ऋष्यमूक गिरि, रम्यस्थान, तापसाश्रम, कोङ्कण, चित्रकूट, मरुचीपट्टन, बलदेवपट्टन, कार्मणेयक, नासिक, गोनर्द, कर्णाटक, द्रविड़, काकु, लाङ्गलकोटि, निद्रास्थान, पाञ्चनद के आश्रित देश, वैखण्ड, कालेय, माल, सूर्पावर्त्त, कुजावह, भोगवती- ये सभी देश दक्षिण दिशा में उत्तराफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं। यह मत काश्यप ऋषि का है। आइए अब आगे बढ़ते हुए मार्कण्डेय पुराण में वर्णित उत्तराफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों पर प्रकाश डाल लेते है-

लङ्काकालाजिनाश्चैव सैनिका निकुचास्तथा।
महेन्द्रमलयौ द्वौ च ददुरे चैव सन्ति ये॥

कर्कोटकरता ये च भरुकच्छः सकोङ्कणः।
शवराश्च तथाऽभीरा वेणीतीरनिवासिनः॥

आवन्तयो दशपुरास्तथैवाकरिणो जनाः।
महाराष्ट्राः सकर्णाटा गोनर्दाश्चित्रकूटकाः॥

चोलाः कोलगिरिश्चैव क्रौञ्चद्वीपा जटाधराः।
कावेरी ऋष्यमूकस्था नासिक्याश्चैव ये जनाः॥

शङ्खवैदूर्यमुक्तादिशैलप्रान्तरताश्च ये।
तथा वारिचराः कौलाश्चर्मपट्टनिवासिनः॥

गणराष्ट्रचराः कृष्णा द्वीपवासनिवासिनः।
सूर्पाद्रौ कुमुदाद्रौ च ये वसन्ति तथा जनाः॥

नौकाञ्चनाः सपिशिकास्तथा ये कार्मणेयकाः।
दक्षिणाङ्गे तथा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः ॥

ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः ।
त्रिलिङ्गाः कुञ्जरनदीकच्छवासी च यो नरः ॥
ताम्रपर्णी तथा कुक्षिरिति कूर्मस्य दक्षिणम् ।

लङ्का, कालाजिन, सैनिक, निकुच, महेन्द और मलय दोनों पर्वत, दर्दुर, कर्कोटक, भरुकच्छ, कोङ्कण, शवर, आभीर, वेणा नदी के तटवासी, अवन्ती, दशपुर, आकरिजन, महाराष्ट्र, कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट, चोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप, जटाधारी, कावेरी, ऋष्यमूक, नासिक्यवासी लोग, शंख, वैदूर्य, मुक्ता आदि, पर्वत के निकट रहने वाले, जलचर जीव, कोल, चर्मपट्टनिवासी, सूर्पाद्रि और कुमुदाद्रि- निवासी, नौकाञ्चन, पिशिक, कार्मणेयक, दक्षिण भाग में स्थित सभी ऋषि और तपस्वियों के आश्रम, ऋषभ, सिंहल तथा काञ्ची-निवासी, त्रिलिङ्ग, कुञ्जर नदी के तटवासी, कच्छवासी, ताम्रपर्णी और कूर्मविभागानुसार दक्षिण कुक्षि में स्थित देशवासी उत्तराफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (दक्षिण दिशा) में स्थित हैं। अब हम बृहत्-संहिता में वर्णित उत्तराफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

अथ दक्षिणेन लङ्का कालाजिनसौरिकीर्णताडिकटाः।
गिरिनगरमलयदर्दुरमहेन्द्रमालिन्द्यभरुकच्छाः॥

कर्कोटकवनवासीशिविकामणिकारकोङ्कणाभीराः।
आकरवेणावर्त्तकदशपुरगोनर्दकेरलकाः॥

कर्णाटमहाटविचित्रकूटनासिक्यकोलगिरिचोलाः।
क्रौञ्चद्वीपजटाधरकावेर्या ऋष्यमूकश्च॥

वैडूर्यशङ्खमुक्तात्रिवारिचरधर्मपट्टनद्वीपाः।
गणराष्ट्रकृष्णवेल्लूरपिशिकसूर्पाद्रिकुसुमनगाः॥

तुम्बवनकार्मणेयकयाम्योदधितापसाश्रमा ऋषिकाः।
काञ्चीमरुचीपट्टनचेर्यार्यकसिंहला ऋषभाः॥

बलदेवपट्टनं दण्डकावनं तिमिङ्गिलाशना भद्राः।
कच्छोदकन्दरदरीसताम्रपर्णीति विज्ञेयाः॥

लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, ताडिकट (तालिकट), गिरिनगर, मलयपर्वत, दर्दुर, महेन्द्रपर्वत, मालिन्घ, भरुकच्छ, कर्कोटक, वनवासी, शिविक, मणिकार, कोङ्कण, आभीर, आकर, वेण, आवर्त्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवि, चित्रकूट, नासिक्य, कोलगिरि, चोल, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कावेरी नदी, ऋष्यमूक पर्वत, वैदूर्य, शंख, मुक्ता आदि के उत्पत्तिस्थान, त्रिवारिचर, धर्मपुरद्वीप, गणराज्य, कृष्णवेल्लूर, पिशिक, सूर्पाद्रि, कुसुमनग, तुम्बवन, कार्मणेयक, दक्षिण समुद्र, तापसाश्रम, ऋषिक, काञ्ची, मरुचीपट्टन, चेर्य, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदेवपट्टन, दण्डकारण्य, तिमिङ्गिलाशन, भद्र, कच्छोद, कन्दरा, दरी, ताम्रपर्णी- ये सभी देश उत्तराफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (दक्षिण दिशा) में स्थित हैं। आइए अब हम पाराशर ऋषि द्वारा वर्णित उत्तराफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

अथ दक्षिणस्यां
विन्ध्यकुसुमापीडदर्दुरमहेन्द्रसूर्यावर्त्तमलयमालवावन्तिशावरत्रिदशपुरैक-
कर्णभवकच्छर्षिकपवनवासोपगिरिनगरदण्डकगणराष्ट्रस्त्रीराज्यकर्कोटकवनतिमिङ्गि
लसमहरऋष्यमूकतापसाश्रमचम्पाशङ्खमुक्ताप्रवालवैडूर्याकरोड्रत्रिवारिचरविरिञ्चिद

क्षिणार्णवचोलककौवेरकावेरीपिशिकधर्मपट्टनपट्टिकासिकृष्णवर्णताम्रपर्णनर्मदाका ञ्चीपट्टनकलिकटिसेनाकीर्णहरिणकारवेणीतटतुम्बवनवैखण्डकालाजिनद्वीपिकर्णिका रशिविकोङ्कणचित्रकूटकार्णाटहारिकान्ध्रकोलगिरिनासिक्यर्क्षकार्मणेयकविघातक चोचिलकबलदेवपट्टनक्रौञ्चद्वीपसिंहलाः। परमगोवर्धनमलयमरुचित्रकूट- शिखरालङ्कृतलङ्कासूर्पावर्त्तर्षभकुञ्जरवदरीगाङ्गवतीनृणादाङ्गिरिसाश्रमाः।

दक्षिण दिशा में विन्ध्य, कुसुमापीड, दर्दुर, महेन्द्र, सूर्पावर्त्त और मलयपर्वत, मालवा, अवन्ती, शवर, त्रिदशपुर, एककर्ण, भवकच्छ (भरुकच्छ), ऋषिक, पवनवास, उपवन, गिरि, नगर, दण्डकारण्य, गणराज्य, स्त्रीराज्य, कर्कोटकवन, तिमिङ्गिल, समहर, ऋष्यमूक पर्वत, तापसाश्रम, चम्पासरोवर, शङ्ख मुक्ता प्रवाल वैडूर्य आकर आदि के उत्पत्तिस्थान, उड्र, त्रिवारिचर, विरिञ्चि, दक्षिण समुद्र, चोलक, कौवेर, कावेरी, पिशिक, धर्मपट्टन, पट्टिक, असि, कृष्णवर्ण, ताम्रवर्ण, नर्मदा, काञ्चीपट्टन, कलिकटि, सेनाकीर्ण, हरिणकार, वेणीतट, तुम्बवन, वैखण्ड, कालाजिन, द्वीपि, कर्णिकार, शिवि, कोङ्कण, चित्रकूट, कार्णाट, हारिक, आन्ध्र, कोलगिरि, नासिक, ऋक्ष, कार्मणेयक, विघातक, चोचिलक, बलदेवपट्टन, क्रौञ्च और सिंहल द्वीप, परम, गोवर्धन, मलय, मरु, चित्रकूट, शिखरालंकृत, लङ्का, सूर्पावर्त्त, ऋषभ, कुञ्जर, वदरी, गाङ्गवती, नृणाद, आङ्गिरसाश्रम - ये सभी देश दक्षिण दिशा में उत्तराफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं।

5.4.3 स्वाती आदि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

नैर्ऋत्यां दिश्यमी देशाः सिन्धुपह्लवकच्छपाः।
आभीराः शूद्रसौवीरा रैवताः क्रीतभीषणम्॥

कालेयाः फलगिरयो वर्वराः खण्डमुञ्जकाः।
यवना मार्गणानर्त्ताः कर्णप्राचेयकास्तथा॥

किराता द्रविडाः सिन्धुस्त्रीमुखाः कपिलास्तथा।
प्रभावमङ्गसन्देशं महासागर एव च॥

सिन्धु प्रदेश, पह्लव, कच्छप, आभीर, शूद्र, सौवीर, रैवत, क्रीतभीषण, कालेय, फलगिरि, वर्वर, खण्डमुञ्जक, यवन, मार्गण, आनर्त्त, कर्णप्राचेय, किरात, द्रविड, सिन्धुनद, स्त्रीमुख, कपिल, प्रभाव, अङ्ग, सन्देश और महासागर नैर्ऋत्य दिशा में स्वाती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में ये देश स्थित हैं। यह मत काश्यप ऋषि का है। आगे बढ़ते हुए क्रम में मार्कण्डेय पुराण में वर्णित स्वाती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों पर प्रकाश डाल लेते है-

काम्बोजाः पह्लवाश्चैव तथैव वडवामुखाः।
तथैव सिन्धुसौवीराः सानर्त्ता वनितामुखाः॥

यवना मार्गणाः शूद्राः कर्णप्रावेयवर्वराः।
किराताः पारताः पाण्ड्यस्तथा पारशवाः कुलाः॥

प्रचुका हेमगिरिकाः सिन्धुकालकरैवताः।
सौराष्ट्रवादराश्चैव द्रविडाश्च महार्णवाः॥

एते जनपदाः पादे स्थिता वै दक्षिणापरे।

काम्बोज, पह्लव, वडवामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त्त, वनितामुख, यवन, मार्गण, शूद्र, कर्णप्रावेय, वर्वर, किरात, पारत, पाण्ड्य, पारशव, कुलक, प्रचुक, हेमगिरिक, सिन्धुनद, कालक, रैवत, सौराष्ट्र, वादर, द्रविड, महार्णव- ये सभी देश स्वाती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में नैर्ऋत्य दिशा में स्थित हैं। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब हम बृहत् संहिता में वर्णित स्वाती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

नैर्ऋत्यां दिशि देशाः पह्लवकाम्बोजसिन्धुसौवीराः।
वडवामुखारवाम्बष्ठकपिलनारीमुखानर्त्ताः॥

फेणगिरियवनमार्गणकर्णप्रावेयपारशवशूद्राः।
वर्वरकिरातषण्ढक्रव्यादाभीरचञ्चमुखाः॥

हेमगिरिसिन्धुकालकरैवतकसुराष्ट्रवादरद्रविडाः।
स्वात्याद्ये भत्रितये ज्ञेयश्च महार्णवोऽत्रैव॥

पह्लव, काम्बोज, सिन्धुप्रदेश, सौवीर, वडवामुख, अरब, अम्बष्ठ, कपिल, नारीमुख, आनर्त्त, फेणगिरि, यवन, मार्गण, कर्णप्रावेय, पारशव, शूद्र, वर्वर, किरात, षण्ढ = नपुंसक (पाठान्तर से खण्ड), क्रव्याद, आभीर, चञ्चुमुख, हेमगिरि, सिन्धुनद, कालक, रैवतक, सुराष्ट्र, वादर, द्रविड़ और महार्णव- ये सभी स्वाती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (नैर्ऋत्य दिशा) में स्थित हैं। आइए अब पाराशर ऋषि के द्वारा वर्णित स्वाती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों को जान लेते है-

अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराष्ट्रसिन्धुसुराष्ट्रसौवीरशूद्राभीरद्रविडकेतक-सिन्धुकोलकहेमगिरिरैवतकानर्त्तकवाह्लीकयवनपह्लववर्वरधूम्राम्बष्ठकर्णप्रवरकशिरोवासिनोऽतः परं महार्णवो यत्रौर्वकोपजोऽग्निर्वडवामुखः इति।

महाराष्ट्र, सिन्धु प्रदेश, सौराष्ट्र, सौवीर, शूद्र, आभीर, द्रविड़, केतक, सिन्धुनद, कोलक, हेमगिरि, रैवतक, आनर्त्त, वाह्लीक, यवन, पह्लव, वर्वर, धूम्र, अम्बष्ठ, कर्णप्रवरक, शिरोवासी और इसके अतिरिक्त महार्णव, जहाँ और्व ऋषि के क्रोध से उत्पन्न वडवानल नामक समुद्राग्नि है। ये सभी देश नैर्ऋत्य दिशा में स्थित स्वाती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में हैं।

ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ा-

पश्चिमेऽस्तगिरेः शृङ्गे महेन्द्रो नाम पर्वतः।
महोपलो महाहेमशृङ्गः सानुभिराकुलः॥

वामनः शृङ्गका वैश्या तारक्षुत्कशकास्तथा।
केशान्तिका हैहयाश्च निर्मर्यादाश्च ये नराः॥

अस्तगिरि के दोनों शृङ्ग, महेन्द्र नामक पर्वत, महोपल, महाहेमशृङ्ग, पर्वत के समतलवासी, वामन, शृंगक, वैश्य, तारक्षुत्, कशक, केशान्तिक, हैहय और मर्यादाहीन (म्लेच्छ आदि) जाति के लोग पश्चिम दिशा में ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं। यह मत काश्यप ऋषि का है। आइए अब ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में जो जो देश मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है उसे

भी जान लेते है-

मणिमेघः क्षुराद्रिश्च खञ्जनोऽस्तगिरिस्तथा।
अपरान्तिका हैहयाश्च शान्तिकादिप्रशस्तिकाः॥

वोक्काणाः पञ्चनदका वामनाः पारतास्तथा।
ताक्ष्यार्‍ ऋक्षाङ्गलकाः शर्कराः शाल्ववैश्यकाः॥

गुरुपर्वाः फाल्गुनका वेणुमत्यां च ये जनाः।
एकेक्षणाः शशरुहा दीर्घग्रीवास्तु सैनिकाः॥
अश्वकेशास्तथा पुच्छे जनाः कूर्मस्य संस्थिताः।

मणिमेघ, क्षुराद्रि, खञ्जन, अस्तगिरि, अपरान्तिक, हैहय, शान्तिक, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, वामन, पारत, ताक्ष्यर्, ऋक्षाङ्गलक, शर्कर, शाल्व, वैश्य, गुरुपर्व, फाल्गुनक, वेणुमती, एकेक्षण, शशरुह, दीर्घग्रीव, सैनिक, अश्वकेश आदि कूर्मपुच्छ (पश्चिम दिशा) में ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब हम बृहत् संहिता में वर्णित ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

अपरस्यां मणिमान् मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणोऽस्तगिरिः।
अपरान्तिकशान्तिकहैहयप्रशस्ताद्रिवोक्काणाः

पञ्चनदरमठपारततारक्षुभितं सवैश्यकनकशकाः।
निर्मर्यादा म्लेच्छा ये पश्चिमदिक्स्थितास्ते च॥

मणिमान्, मेघवान्, वनौघ, क्षुरार्पण, अस्तगिरि, अपरान्तक, शान्तिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, रमठ, पारत, तारक्षुभित्, वैश्य, कनक, शक, मर्यादारहित, म्लेच्छ, जो पश्चिम दिशा में रहते हैं- ये सभी ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पश्चिम दिशा) में स्थित हैं। अब ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देश के बारे में पाराशर ऋषि का भी मत देख लेते है-

अथ पश्चिमायां मणिमत्क्षुरार्पणमेघवद्वनौघचक्रवदस्तगिरिप्रशस्ताद्रिमण्डिताः पञ्चनदकाशिब्रह्मवसतितारक्षितिपारतशान्तिकशिविरमहाशृङ्गिवायव्यगुडवासिजहैह यसत्कङ्गताजिकहूणपार्श्ववैकतकवोक्काणाः । अन्ये च गिरिवासिनस्त्यक्तधर्ममर्यादा म्लेच्छजातयः ।

मणिमान्, क्षुरार्पण, मेघवान्, वनौघ, चक्रवान्, अस्तगिरि, प्रशस्ताद्रि, मण्डित, पञ्चनद, काशी, ब्रह्मवसति, तारक्षिति, पारत, शान्तिक, शिविर, महाशृङ्गि, वायव्य, गुडवासिज, हैहय, सत्कङ्ग, ताजिक, हूण, पार्श्व, वैकतक, वोक्काण तथा अन्य पर्वतवासी, धर्म और मर्यादा को छोड़ने वाले, म्लेच्छ जाति के लोग ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में पश्चिम दिशा में स्थित हैं।

उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा-

माण्डव्याश्च तुषाराश्च अश्वफाललतास्तथा।
कुलूतालद्रुमाश्चैव स्त्रीराष्ट्रलोहिकास्तथा॥

नृसिंहा वेणुमत्याश्च वनावस्थास्तथा परे।
चर्मवङ्गास्तथा लुकास्तन्त्रकूर्चास्तथा जनाः॥
तथा फाल्गुनका घोरा गुरूहा शूलिकास्तथा।
एकेक्षणा वाजिकेशा दीर्घग्रीवास्तथैव च॥
वामपादे जनाश्चैते स्थिताः कूर्मस्य भागुरेः।

माण्डव्य, तुषार, अश्वफाल, लता, कुलूत, तालद्रुम, स्त्रीराज्य, लोहिक, नृसिंह, वेणुमती नदी, वनवासी, चर्म, वङ्ग, लूक, तन्त्र, कूर्च, फाल्गुनक, घोर, गुरुहा, शूलिक, एकेक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव– ये सभी देशवासी कूर्म के वामपाद में उत्तराषाढ़ादि तीन नक्षत्रों के वर्ग (वायव्य दिशा) में स्थित हैं। यह मत मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है। आगे बढ़ते हुए क्रम में बृहत् संहिता में वर्णित उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों पर प्रकाश डाल लेते है-

दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारतालहलमद्राः।
अश्मककूलूतहलडाः स्त्रीराष्ट्रनृसिंहवनखस्थाः॥

वेणुमती फल्गुलुका गुलुहा मरुकुत्सचर्मरङ्गाख्याः।
एकविलोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकेशाश्च॥

माण्डव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्मक, कुलूत, हलड, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खस्थ, वेणुमती नदी, फल्गुलुक, गुलुह, मरु, कुत्स, चर्मरङ्ग, एकविलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव, दीर्घास्य, दीर्घकेश- ये सब देश उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (वायव्य कोण) में स्थित हैं। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब हम वटकणिका में वर्णित उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

विश्वेश्वरादिशूलिकतालतुषारैकनेत्रमाण्डव्याः ।
स्त्रीराज्यचर्मरङ्गाश्महलारुहकफल्गुलुकाः.॥

शूलिक, ताल, तुषार, एकनेत्र, माण्डव्य, स्त्रीराज्य, चर्मरङ्ग, अश्मक, हलारुहक, फल्गुलुक– ये सब देश विश्वेश्वर (उत्तराषाढ़ा) आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (वायव्य कोण) में स्थित हैं। आइए अब पाराशर ऋषि के द्वारा वर्णित उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों को जान लेते है-

अथ पश्चिमोत्तरस्यां दिशि गिरिमतिवेणुमतिरलमतिफाल्गुनकमाण्डव्यैक-नेत्रमरुकुत्सतुषारतालफलमद्रहलहंसवलाहानलानदीर्घकेशग्रीवाव्यङ्गाचर्मवङ्गखग शूलिगुरूहकुलाताः परमतः स्त्रीराष्ट्रमिति।

गिरिमती, वेणुमती, रलमती, फाल्गुनक, माण्डव्य, एकनेत्र, मरु, कुत्स, तुषार, तालफल, मद्र, हल, हंस, वलाह, अनलान, दीर्घकेश, दीर्घग्रीव, अव्यङ्ग, चर्म, वङ्ग, खग, शूलिक, गुरुह, कुलात और स्त्रीराज्य- ये सभी देश उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग पश्चिमोत्तर दिशा (वायव्य दिशा) में स्थित हैं।

5.4.4 शतभिषादि नक्षत्रों के वर्ग तथा फल विवेचन

उत्तरस्यां तु कैलासं मरुमुत्तरजान् कुरून्।
विशातयः क्षुद्रमीनाः क्रौञ्चोऽथ हिमवान् गिरिः॥
कैकया यामुनाश्चैव भोगप्रस्थाः क्षुरा नगाः।
आदर्शाश्च त्रिगर्त्ताश्च उत्तराः केशधारिणः॥

तक्षशिलाः पिङ्गलकाः कण्ठधाराश्च मानवाः।
पुष्करावतकैराताश्चिपिटानासिकाश्च ये॥

मालवाः पिङ्गलाधर्मा यौधेया दासमेयकाः।
हूणा हयमुखाश्चैव गान्धारा हेममालकाः॥
राजन्याः खेचरा गव्याः श्यामकाः क्षेमधूर्त्तकाः।

कैलास, मरु, उत्तर कुरु, विशाति, क्षुद्रमीन, क्रौञ्च, हिमवान् पर्वत, कैकय, यामुन, भोगप्रस्थ, क्षुरपर्वत, आदर्श, त्रिगर्त्त, उत्तरकेशधारी, तक्षशिला, पिङ्गलक, कण्ठधारामानव, पुष्करावत, कैरात, चिपिटनासिक, मालव, पिङ्गलधर्म, यौधेय, दासमेयक, हूण, हयमुख, गान्धार, हेममालक, राजन्य, खेचर, गव्य, श्यामक, क्षेमधूर्त्तक – ये सब देश उत्तर दिशा में शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं । यह मत काश्यप ऋषि का है। आगे बढ़ते हुए क्रम में मार्कण्डेय पुराण में वर्णित शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों पर प्रकाश डाल लेते है-

कैलासो हिमवाँश्चैव धनुष्मान् दर्दुरस्तथा।
क्रौञ्चः कुरवकाश्चैव क्षुद्रमीनाश्च ये जनाः॥

वशाभयः सकैकेया भोगप्रस्थाः सयावनाः।
अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च अग्निक्षामार्जुनायनाः॥

तथैवाश्वमुखाः प्रान्ताश्चिपिटाः केशधारिणः।
दासेरका वाटधानाः शरधानास्तथैव च॥

पुष्करावर्त्तकैरातास्तथा तक्षशिलाश्रयाः।
असुरा मालवा मुण्डाः कैशिकाः शरदण्डकाः॥

पिङ्गला माणहलका हूणाः कोहलकास्तथा।
माण्डव्या भूतिपुलकाः शातका हेमतालकाः॥

यशोमत्स्याः सगान्धाराः खचराः सव्यवामकाः।
यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः श्यामकास्तथा॥
क्षेमधूर्त्ताश्च कूर्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः।

कैलास, हिमवान्, धनुष्मान्, दर्दुर, क्रौञ्च, कुरवक, क्षुद्रमीन, वशाति, कैकय, भोगप्रस्थ, यावन, अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त्त, अग्नि, क्षाम, अर्जुनायन, अश्वमुख, प्रान्तचिपिट, केशधारी, दासेरक,

वाटधान, शरधान, पुष्कर, आवर्त्त, कैरात, तक्षशिला, असुर, मालव, मुण्ड, कैशिक, शरदण्डक, पिङ्गल, माणहलक, हूण, कोहलक, माण्डव्य, भूतिपुलक, शातक, हेमतालक, यशोमती, मत्स्य, गान्धार, खचर, सव्य, वामक, यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामक, क्षेमधूर्त्त - ये सब देश और कूर्म के वाम कुक्षि में आश्रित देश शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (उत्तर दिशा) में स्थित हैं। अब हम बृहत् संहिता में वर्णित शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों को जान लेते है-

उत्तरतः कैलासो हिमवान् कुसुमान् गिरिधनुष्माँश्च।
क्रौञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च॥

कैकेयवसातियामुनभोगप्रस्थार्जुनायानाम्बष्ठाः।
आदर्शान्तर्द्वीपत्रिगर्त्ततुरगाननाः श्वमुखाः॥

केशधरचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः।
तक्षशिलपुष्कलावतकैरातककण्टधानाश्च॥

अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारदण्डपिङ्गलकाः।
माणहलहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभूतपुराः॥

गान्धारयशोवतिहेमतालराजन्यखचरगव्याख्याः।
यौधेयदासमेयाः श्यामाकाः क्षेमधूर्त्ताश्च॥

कैलास, हिमवान, वसुमान, धनुष्मान, क्रौञ्च, मेरुगिरि, उत्तरकुरु, क्षुद्रमीन, कैकय, वसाति, यामुन, भोगप्रस्थ, अर्जुनायन, अम्बष्ठ (पाठान्तर से आग्नीध्र), आदर्श, अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त्त, तुरगानन, श्वमुख, केशधर, चिपिटनासिक, दासेरक, वाटधान, शरधान, तक्षशिला, पुष्कलावत, कैरातक (पाठान्तर से कैलावतक), कण्टधान (कण्ठधान), अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दण्डपिङ्गलक, माणहल, हूण, कोहल, शीतक, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवती, हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य, यौधेय, दासमेय, श्यामक और क्षेमधूर्त्त- ये सब देश शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (उत्तर दिशा) में स्थित हैं। आइए अब पाराशर ऋषि के द्वारा वर्णित शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों को जान लेते है-

अथोत्तरस्यां
हिमवत्क्रौञ्चमधुमत्कैलाशवसुमन्मेरुनगोत्तरोत्तरमद्रपौरवयौधेयमालवशूरसेनराजन्या-र्जुनायनत्रिगर्त्तकैकयक्षुद्रमालवकमत्स्यवसातिदर्भफलाफलाग्निस्थलसुस्थलशाकलक्षेमधूर्त्तदासमेयानहव्यमुरदण्डगव्यनव्यजनधानादाशेरकवाटधानान्तर्द्वीपगान्धारवन्दिसुरास्तुततक्षशिलालवणत्रिपुष्करावर्त्तयशोवतिमणिवतिश्यामकशवरकोहलकनगरशरभूतिपूरकैरातकदशान्तदशपिङ्गलयामुनेयमणिफलदुणहेमतालाश्वमुखाः।
हिमवद्वसुमत्कैलाशक्रौञ्चात्परमभिजना।

हिमवान्, क्रौञ्च, मधुमान्, कैलास, वसुमान्, मेरु पर्वतोत्तर, उत्तरमद्र, पौरव. यौधेय, मालव, शूरसेन, राजन्य, अर्जुनायन, त्रिगर्त्त, कैकय, क्षुद्र, मालवक, मत्स्य, वसाति, दर्भफल, अफल, अग्निस्थल, सुस्थल, शाकल, क्षेमधूर्त्त, दासमेय, अनहव्य, मुर, दण्ड, गव्य, नव्य, जनधान, दाशेरक, वाटधान, अन्तर्द्वीप, गान्धार, वन्दी, सुरास्तुत, तक्षशिला, लवण, त्रिपुष्कर, आवर्त्त,

यशोवती, मणिवती, श्यामक, शवर, कोहलकनगर, शरभूतिपुर, कैरातक, दशान्त, दशपिङ्गल, यामुनेय, मणिफलत्, गुण, हेम, ताल, अश्वमुख, हिमवान्, वसुमान्, कैलास और क्रौञ्च पर्वत के श्रेष्ठ निवासी- ये सभी देश उत्तर दिशा में शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं।

रेवती, अश्विनी और भरणी-

ऐशान्यां दिशि काश्मीरं दरदश्च सतङ्गणाः।
अभिसारकुलूता ये सौहृद्यं नष्टराज्यकम्॥

चीनाः किरातकाम्बोजाः कौलिन्दा वनराज्यकाः।
ब्रह्मपुरदीर्घलोलं पह्लवा एकपादकाः॥

सुवर्णं भूरत्नं विश्वावसु धनं च जटाधरः।
दिविष्ठाश्च धरा ये च कुलटाः कुचिकारिणः॥

पौरवाश्चीनवसनास्त्रिनेत्राः पुञ्जगा नगाः।
पशुपालगणाध्यक्षाः कनकाचलवासिनः॥

गान्धर्वाः कीरदेशाख्यदासमेया जनास्तथा।
एते कूर्मविभागेन विषया भारते स्थिताः॥

काश्मीर, दरद, तङ्गण, अभिसार, कुलूत, सौहृद्य, नष्टराज्य, चीन, किरात, काम्बोज, कौलिन्द, वनराज्य, ब्रह्मपुर, दीर्घलोल, पह्लव, एकाद, सुवर्णभूमि, रत्नभूमि, विश्वावसु, धनभूमि, जटाधर, दिविष्ठ, धरा, कुलट, कुचिकारी, पौरव, चीरवसन, त्रिनेत्र, पुञ्जगनग, पशुपाल, गणाध्यक्ष, कनकाचलवासी, गान्धर्व, कीरदेश, दासमेय- ये सब देश कूर्मविभाग से भारत में रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (ईशान कोण) में स्थित हैं।। यह मत काश्यप ऋषि का है। आगे बढ़ते हुए क्रम में मार्कण्डेय पुराण में वर्णित रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों पर प्रकाश डाल लेते है-

मेरुकं नष्टराज्यं च पशुपालं सचोलकम्।
काश्मीरं च तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा॥

दरदास्तङ्गणाश्चैव कुलटा वनराष्ट्रकाः।
गिरिष्ठा ब्रह्मपुरकास्तथैव वनराज्यकाः॥

किराताश्चीनकालिन्दा जनाः पह्लवलोलजाः।
दीर्घा डामरकाश्चैव कुलटाश्चानुदीनकाः॥

एकपादाः खशा घोषाः स्वर्णभौमाः सविश्वकाः।
तथा वसुधनादिस्थाश्चीरप्रावरणाश्च ये॥

त्रिनेत्राः पौरवाश्चैव गन्धर्वाश्च द्विजोत्तम।
पूर्वोत्तरं तु कूर्मस्य पादमेते समाश्रिताः॥

मेरुपर्वत, नष्टराज्य, पशुपाल, चोल, काश्मीर, अभिसार, दरद, तङ्गण, कुलट, वनराष्ट्र, गिरिष्ठ, ब्रह्मपुर, वनराज्य, किरात, चीन, कौलिन्द, पह्लव, लोलज, दीर्घडामरक, अनुदीन, कुलट, एकपाद, खश, घोष, स्वर्णभूमि, विश्वक, वसुधन, चीरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव, गन्धर्व - ये सभी देश कूर्म विभाग के पूर्वोत्तर पाद में रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग गत हैं। आगे बढ़ते हुए क्रम में बृहत् संहिता में वर्णित रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों पर प्रकाश डाल लेते है-

ऐशान्यां मेरुकनष्टराज्यपशुपालकीरकाश्मीराः।
अभिसारदरदतङ्गणकुलूतसैरिन्ध्रवदनराष्ट्राः॥

ब्रह्मपुरदीर्घडामरवनराज्यकिरातचीनकौलिन्दाः।
पह्लवलोलजटाधरकुलटाः खशघोषकुशिकाख्याः॥

एकचरणान्ध्रविश्वाः सुवर्णभूर्वसुधनं दिविष्ठाश्च।
पौरवचीरनिवासिनत्रिनेत्रमुञ्जाद्रिगान्धर्वाः॥

मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कीर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तङ्गण, कुलूत, सैरिन्ध्र, वदनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दीर्घडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कौलिन्द, पह्लव, लोल, जटाधर, कुलूत, खश, घोष, कुशिक (पाठान्तर से.भल्ल, पटोल, जटासुर, कुनट, खश, घोष, कुचिक), एकचरण, आन्ध्र, विश्व (पाठान्तर से एकचरण, अनुविद्ध), सुवर्णभू, वसुधन, दिविष्ठ, पौरव, चीरनिवासी, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि, गन्धर्व— ये सब देश रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (ईशान कोण) में स्थित हैं। अब रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देश के बारे में पाराशर ऋषि का भी मत देख लेते है-

अथ प्रागुत्तरस्यां कौलूतपुरब्रह्मपुरकुलिन्ददिनपारतनष्टराज्यवनराष्ट्रवैमकेणभल्ल-सिंहपुरचामरतङ्गणसार्यकमाषकपार्वतकाश्मीरदरददार्वाभिसारजटाधरलोलसैरिन्ध्रिककारकौन्तलकिरातपशुपालचीनस्वर्णभूमिदेवस्थलदेवोद्यानानि।

कौलूतपुर, ब्रह्मपुर, कुलिन्द, दिन, पारत, नष्टराज्य, वनराज्य, वैमकेण, भल्ल, सिंहपुर, चामर, तङ्गण, सार्यक, माषक, पार्वत, काश्मीर, दरद, दार्व, अभिसार, जटाधर, लोल, सैरिन्ध्रि, ककार, कौन्तल, किरात, पशुपाल, चीन, स्वर्णभूमि, देवस्थल और देवोद्यान - ये सब देश पूर्वोत्तर दिशा (ईशान कोण) में रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग में स्थित हैं। जैसे नक्षत्रों के कूर्म विभाग में सभी नक्षत्रों के देश आदि का वर्णन किया है वैसे ही राशियों के कूर्म विभाग में राशियों के देश उक्त है-

कूर्मदेशास्तथार्क्षाणि देशष्वेतेषु वै द्विज।
राशयश्च तथार्भेषु ग्रहराशिष्ववस्थिताः॥

तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासु देशपीडां विनिर्दिशेत्।
यस्यर्क्षस्य पतिर्यो हि ग्रहस्तद्धानितो भयम्॥

तद्देशस्य मुनिश्रेष्ठ तथोत्कर्षे शुभागमे।
मेषादयस्तयोर्मध्ये मुखे द्वौ मिथुनादिकौ॥

प्राग्दक्षिणे तथा पादे कर्कसिंहौ व्यवस्थितौ।
सिंहः कन्या तुलश्चैव कुक्षौ राशित्रयं स्मृतम्॥

तुला च वृश्चिकश्चोभौ पादे दक्षिणपश्चिमे।
पृष्ठे च वृश्चिकश्चैव सहधन्वी व्यवस्थितः॥
वायव्ये, चास्य वै पादे धनुर्ग्राहादिकं त्रयम्।
कुम्भमीनौ तथैवास्य उत्तरं कुक्षिमाश्रितौ॥

मीनमेषौ द्विजश्रेष्ठ पदे पूर्वोत्तरे स्थितौ।
तस्माद्विज्ञाय देशर्क्षग्रहपीडां तथाऽऽत्मनः॥
कुर्वीत शान्तिं मेधावी लोकवादाँश्च सत्तम।

राशि और राशिपति के पीड़ित होने से वक्ष्यमाण राशिदेशों के निवासियों को पीड़ा होती है। नक्षत्र कूर्मविभागानुसार सभी नक्षत्रों के देश उक्त प्रकार से कहे गये हैं। नक्षत्रानुसार १२ राशियों का भी कूर्मविभाग किया गया है। ग्रह नक्षत्र और राशियों में स्थित होकर गमन करते हैं। इसलिए नक्षत्र या राशि और ग्रह (राशीश) के पीड़ित होने पर नक्षत्र और राशियों के देशवासियों को पीड़ा कहनी चाहिये। जिस राशि का जो ग्रह स्वामी है, उस ग्रह के पीड़ित होने पर राशिदेश में भय और ग्रह के उत्कर्ष में उस देश में शुभागम होते हैं। कूर्म के मध्य (मध्यदेश) में मेष और वृष, मुख (पूर्व दिशा) में मिथुन और कर्क, पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) पाद में कर्क और सिंह, दक्षिण कुक्षि (दक्षिण दिशा) में सिंह कन्या और तुला, दक्षिण-पश्चिम पाद (नैर्ऋत्य) में तुला और वृश्चिक, पृष्ठभाग (पश्चिम दिशा) में वृश्चिक और धनु, पश्चिमोत्तर (वायव्य) पाद में धनु मकर और कुम्भ, उत्तर कुक्षि (उत्तर दिशा) में कुम्भ और मीन तथा उत्तर-पूर्व पाद (ईशान कोण दिशा) में मीन और मेष राशि व्यवस्थित हैं। इसलिए राशि और ग्रह की पीड़ा के अनुसार उक्त प्रकार से अपने-अपने देशों की पीड़ा को जानकर उसके शमन के लिये मेधावी को सम्बन्धित ग्रह की शान्ति और लोकवादों को करना चाहिये।

स्पष्टता के लिए दिग् विभाग का चक्र देखें-

8.ईशान रेवती अश्विनी भरणी	**2. पूर्व आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य**	**3. आग्नेय आश्लेषा मघा पूर्वाफाल्गुनी**
8. उत्तर शतभिषा पूर्वाभाद्रपदा उत्तराभाद्रपदा	**1. मध्य कृत्तिका रोहिणी मृगशिरा**	**4. दक्षिण उत्तराफाल्गुनी हस्त चित्रा**
7. वायव्य उत्तराषाढ़ा श्रवण धनिष्ठा	**6. पश्चिम ज्येष्ठा मूल पूर्वाषाढ़ा**	**5. नैऋत्य स्वाती विशाखा अनुराधा**

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र में कूर्मचक्र का अर्थ है- नक्षत्र एवं राशियों के वर्ग (हिस्सा) का चक्र। कृत्तिकादि सत्ताईस नक्षत्रों एवं मेषादि द्वादश राशियों का कूर्मचक्र एवं उनके फलों का वर्णन संहिताचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। यह निश्चित है कि कृत्तिकादि तीन नक्षत्र (कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा) इस भारतवर्ष के मध्य देश में कहे गये हैं। इन नक्षत्रों के पीड़ित होने पर मध्य देशों में स्थित प्रदेशों (स्थान) को ताप अर्थात् कष्ट होता है। उक्त वर्ग के क्रम से अर्थात् पृथ्वी के नौ भागों (चार दिशा, चार विदिशा एवं एक भूमध्य) के क्रम आर्द्रादि तीन-तीन नक्षत्र आठ दिशाओं में होते हैं तथा तत्तत् नक्षत्रों के पीड़ित होने पर तत्तत् दिशाओं में स्थित जनपद-निवासियों को पीड़ा होती है अर्थात् आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य – इन तीन नक्षत्रों के पीड़ित होने पर पूर्व दिशा में स्थित देशों के जनपदवासियों को पीड़ा होती है। आश्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुनी के पूर्व-दक्षिण (अग्निकोण) में स्थित देश; उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा के दक्षिणदेश; स्वाती, विशाखा और अनुराधा के नैर्ऋत्य कोण स्थित देश; ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ा के पश्चिम देश; उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा के वायव्य कोण; शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद के उत्तरदेश तथा रेवती, अश्विनी और भरणी के ईशान कोण में स्थित देश कहे गये हैं। इन नक्षत्रों के पीड़ित होने पर उनके देशों के जनपदवासियों को पीड़ा होती है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

शृङ्ग – शिखर

प्रवाल – मूँगा

ओड्र – उड़ीसा

आर्यावर्त्त – भारतवर्ष

हिमवान् – हिमालय

अधिपति – स्वामी

5.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

बृहत्संहिता

मार्कण्डेयपुराण

काश्यपसंहिता

अद्भुतसागर

5.8 बोधप्रश्न

१. कूर्मचक्र से आप क्या समझते। स्पष्ट कीजिये।

२. कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों का वर्णन कीजिये।

३. स्वाती, विशाखा और अनुराधा के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले देशों का वर्णन कीजिये।

४. उत्तराफाल्गुनी, आश्लेषा, आर्द्रा और अश्विनी इन नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों तथा उनके द्वारा प्रदत्त शुभाशुभ फलों का विवेचन करें।

५. बृहत्संहिता में वर्णित सभी नक्षत्रों के वर्ग में आने वाले देशों का वर्णन कीजिये।

इकाई 6 ग्रहभक्ति

इकाई की संरचना

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 ग्रहभक्ति का सामान्य परिचय

6.3.1 सूर्य-चन्द्र-भौम ग्रहों के स्वरूप एवं भक्ति

6.3.2 बुध-गुरु-शुक्र ग्रहों के स्वरूप एवं भक्ति

6.3.3 शनि-राहु-केतु ग्रहों के स्वरूप एवं भक्ति

6.4 शुभाशुभ ग्रहों का निरूपण

6.5 सूर्यादि ग्रहों के दृष्टि तथा मित्रादि का निरूपण

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.9 बोध प्रश्न

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- बता सकेंगे कि ग्रहभक्ति किसे कहते है।
- समझा सकेंगे कि कौन सा ग्रह किस देश, व्यक्ति और वस्तु का अधिपति है।
- सूर्य, चन्द्रमा और मंगल ग्रहों के भक्ति का फल समझा सकेंगे।
- बुध, गुरु और शुक्र ग्रहों के भक्ति का फल जान सकेंगे।
- शनि, राहू और केतु ग्रहों के भक्ति के फलों का विश्लेषण कर सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई सप्तम पाठ्यक्रम संहिता ज्योतिष के चतुर्थ खण्ड दकार्गलादि विचार की छठी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – ग्रहभक्ति । इससे पूर्व आप सभी ने कूर्मचक्र से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत ही ग्रहभक्ति का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं। ग्रहभक्ति से तात्पर्य है- सूर्यादि ग्रहों के भक्ति (हिस्से) का देश-व्यक्ति और वस्तु। सूर्यादि ग्रहों के भक्ति तथा उनके फल का वर्णन संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में विस्तार से किया है। जिसमें आचार्यों ने बताया है कि शुभ और अशुभ फल करने वाले ग्रह अपने देश, व्यक्ति और वस्तु पर ही प्रभाव डालते है, सर्वत्र या अन्य देश, व्यक्ति और वस्तु पर नही। अपने भक्ति (हिस्से) का देश, व्यक्ति और वस्तु उस ग्रह

का देश, व्यक्ति और वस्तु कहलाता है। अत: आइये संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत ग्रहभक्ति के विभिन्न स्वरूपों की तथा उसके द्वारा प्रदत्त होने वाले शुभाशुभ फलों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

6.3 ग्रहभक्ति का सामान्य परिचय

सूर्यादि (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु) ग्रहों के उदय काल, प्रकृति (स्वभाव) स्थित तथा निर्घात, उल्का, धूलि, गृहयुद्ध आदि से अनाहत, स्वराशि में स्थित, उच्च राशि गत, शुभ ग्रह से दृष्ट देश व्यक्ति या वस्तु पर शुभाशुभ फल का विवेचन करना। सूर्यादि ग्रहों के भक्ति तथा उनके फल का वर्णन संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। इस विषय पर कहा गया है कि-

योगायोगफलं योगकर्ता जनयति ग्रहः।
निजे देशे न सर्वत्र निजो देशः स्वभक्तिगः॥

योग करने वाला ग्रहयोग और अयोग अर्थात् शुभ और अशुभ फल करने वाले ग्रह अपने देश, व्यक्ति और वस्तु पर ही प्रभाव डालते है, सर्वत्र या अन्य देश, व्यक्ति और वस्तु पर नही। अपने भक्ति (हिस्से) का देश, व्यक्ति और वस्तु उस ग्रह का देश, व्यक्ति और वस्तु कहलाता है।

6.3.1 सूर्य-चन्द्र-भौम ग्रहों के स्वरूप एवं भक्ति

सूर्यः

भारतीय ज्योतिषशास्त्र में सूर्य ग्रह को काल पुरुष की आत्मा कहा जाता है। ग्रहों का राजादि विभाग किया जाए तो सूर्य को राजा की संज्ञा दी गई है। सूर्य एक प्रकाशक ग्रह है। ग्रहों के आयु विशेष में सूर्य की आयु 50 वर्ष बतायी जाती है। ग्रहों के पुरुषादि विभाग में सूर्य को पुरुष की संज्ञा दी गई है। ब्राह्मणादि वर्ण में सूर्य को क्षत्रिय वर्ण की संज्ञा प्राप्त है। सूर्य सत्व गुण संपन्न ग्रह है। सूर्य के स्वामी अग्नि है तथा सूर्य का स्थान देवस्थान (मंदिर) है। सिंह राशि के स्वामी सूर्य है एवं सूर्य का उच्च राशि मेष तथा नीच राशि तुला है। सूर्य के स्वरूप विशेष का वर्णन बृहत्पराशर होरा शास्त्र में प्राप्त होता है यथा-

मधुपिङ्गलदृक्सूर्यश्चतुस्रः शुचिर्द्विज।
पित्तप्रकृतिको धीमान्पुमानल्पकचो द्विज॥

मधुभाषी, पिङ्गल दृष्टि, चौकोर, पवित्र स्वभाव, पित्तप्रकृतिवाला, बुद्धिमान्, पुरुष और अल्पकेशी सूर्य है।

प्राङ् नर्मदार्द्धशोणोड्रसुह्माः कलिङ्गबाह्लीकाः।
शकयवनमगधशबरप्राग्ज्योतिषकाम्बोजाः॥

मेकलकिरातविकटा बहिरन्तः शैलजाः पुलिन्दाश्च।
द्रविडानां प्रागर्द्धं दक्षिणकूलं च यमुनायाः॥

चम्पोदुम्बरकौशाम्बिचेदिविन्ध्याटवीकलिङ्गाश्च।
पुण्ड्रा गोलाङ्गूलश्रीपर्वतवर्द्धमानानि॥

इक्षुमतीत्यथ तस्करपारतकान्तारगोपबीजानाम्।
तुषधान्यकटुकतरूकनकदहनविषसमरशूराणाम्॥

भेषजभिषक्चतुष्पदकृषिकरनृपहिंस्रयायिचौराणाम्।
व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वामी॥

नर्मदा नदी के पूर्वभाग, शोणनद, उड्र, बङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग, बाह्मीक,शक, यवन, मगध, शबर, प्राग्ज्यौतिष, चीन, काम्बोज, मेकल, किरात, विटक, पर्वत के बाहर और मध्य भाग के निवासीजन पुलिन्द,द्रविड का पूर्वभाग, यमुना से दक्षिणी किनारा, विन्ध्याचल के मध्यभाग, कलिङ्ग देश के जनगण, पुण्ड्र, गोलङ्गूल, श्रीपर्वत,वर्द्धमान, इक्षुवती नदी, चोर, पारतदेश के जनगण, वन, गौपालक जन, बीज, भूसी युक्त धान्य, कटुक द्रव्य, वृक्ष, सुवर्ण, अग्नि, विष, युद्ध में शूर, औषधि, चिकित्सक, चौपाया पशु, कृषक, राजाजन, क्रूर, युद्ध जीतने की इच्छा से करने वाले, चोर, सर्प, निर्जन स्थल, यशस्वी, तीक्ष्णजन आदि का अधिपति सूर्य को कहा गया हैं। इसके अतिरिक्त भद्रबाहुसंहिता में सोन नदी का पूर्वार्द्ध, चम्प, मुण्डु, चेदीदेश, कौशाम्बी, औण्ड्र, सुङ्ग का वर्णन मिलता है। इन्हीं प्रदेशों का अधिपति सूर्य को आचार्यवराहमिहिर ने बृहत्संहिता ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

चन्द्रः

ज्योतिष शास्त्र में चन्द्र ग्रह को काल पुरुष का मन कहा जाता है। राजादि विभाग में चन्द्र को भी राजा की संज्ञा प्राप्त है। ग्रहों के उपग्रह में चन्द्र का उपग्रह परिधि है। चन्द्र को भी प्रकाशक ग्रह माना गया है। कर्क राशि के स्वामी चन्द्र हैं तथा चन्द्र का उच्च राशि वृष तथा नीच राशि वृश्चिक है। चन्द्रमा की आयु 70 वर्ष है। ग्रहों के वर्ण में चन्द्र का वर्ण गौर (सित, धवल) है। चन्द्रमा को स्त्री संज्ञक ग्रह माना जाता है। ब्राह्मणादि वर्ण मे चन्द्रमा का वैश्य वर्ण उद्धृत है। सत्व गुण से संपन्न ग्रह चन्द्रमा ही हैं। चन्द्रमा का स्वामी अम्बु (जल) है तथा चन्द्रमा का स्थान जलभाग (नदी- कूप- सागर- महासागर इत्यादि) है। लवण रस से युक्त चन्द्र ग्रह है। वायव्य कोण (दिशा विशेष) के अधिपति तथा वर्षा ऋतु के स्वामी चन्द्रमा है। चन्द्रमा के स्वरूप का वर्णन बृहत्पाराशर होरा शास्त्र में प्राप्त होता है-

बहुवातकफः प्राज्ञश्चन्द्रो वृत्ततनुर्द्विज।
शुभदृक् मधुवाक्यश्च चंचलो मदनातुरः॥

वायु तथा कफ प्रकृति वाला, बुद्धिमान्, गोल आकृति वाला, सौम्य दृष्टि, मनोहर वाड़ी वाला, चंचल तथा कामिनी चन्द्र ग्रह होता है।

गिरिसलिलदुर्गकोशलभरुकच्छसमुद्ररोमकतुषाराः।
वनवासितङ्गणहलस्त्रीराज्यमहार्णवद्वीपाः॥

मधुररसकुसुमफलसलिललवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानाम्।
शालियवौषधिगोधूमसोमपाक्रन्दविप्राणाम्॥

सितसुभगतुरगरतिकरयुवतिचमूनाथभोज्यवस्त्राणाम्।
शृङ्गिनिशाचरकार्षकयज्ञविदां चाधिपश्चन्द्रः॥

पर्वत, जल, दुर्ग, कौशलदेश के जनगण, मरुकच्छ, समुद्र,रोमक, तुषार, वनवासी, तङ्गण, हल, स्त्रीराज, महासागर के अन्त:वर्ति द्वीप, मीठारस, सभी प्रकार के पुष्प व फल, जल, नमक, मणि, शङ्ख, मोती, जलोत्पत्र वस्तु. धान्य, यव, औषधि, गेहूँ, सोम रस का पान करने वाले, आक्रन्द देश के जन, ब्राह्मण, श्वेतवर्ण के वस्तुऐं, सर्वप्रिय जन, अश्व, कामातुर, स्त्री, सेनापति, खाद्यसामग्री, वस्त्र, सिंह युक्त पशु, निशाचर, कृषक, यज्ञकर्त्ता आदि का अधिपति चन्द्र होता हैं। इसके अतिरिक्त भद्रबाहु संहिता में आर्द्र का अधिपति चंद्रमा को बताया गया है। इन्हीं प्रदेशों का अधिपति चंद्रमा को मधुसूदन ओझा जी ने कादम्बिनी ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

मंगल:

ज्योतिष शास्त्र में मंगल ग्रह को काल पुरुष का सत्त्व कहा जाता है। ग्रहों के नेता (सेनापति) की उपाधि मंगल ग्रह को प्राप्त है। मंगल ग्रह का उपग्रह धूम है तथा मंगल ग्रह की आयु बाल्यावस्था है। मंगल ग्रह का वर्ण रक्त वर्ण है और पुरुषादि विभाग में मंगल ग्रह को पुरुष कहा जाता है। मंगल ग्रह को अग्नि तत्व का स्वामी कहा जाता है एवं ब्राह्मणादि वर्ण में मंगल को क्षत्रिय वर्ण की उपाधि प्राप्त है। मंगल तमोगुण प्रधान ग्रह है। मंगल ग्रह के स्वामी अग्निज (कार्तिकेय) हैं तथा मंगल ग्रह का स्थान अग्निस्थान (यज्ञभूमि, महानस, श्मशान इत्यादि) है। मेष तथा वृश्चिक राशि के स्वामी मंगल हैं तथा मंगल की उच्चराशि मकर एवं नीचराशि कर्क है। उत्तर दिशा के स्वामी मंगल हैं एवं ग्रीष्म ऋतु के भी स्वामी मंगल ही हैं। मंगल के स्वरूप का वर्णन करते हुए बृहत्पराशर होरा शास्त्र में कहा जाता है-

क्रूररक्तारुणो भौमश्चपलो दारमूर्तिक:।
पित्तप्रकृतिक: क्रोधी कृशमध्यतनुर्द्विज॥

क्रूरस्वभाव, रक्तवर्ण, अरुणदेह, चंचल, उदार हृदयवाला, पित्तप्रकृति, क्रोधी, कृश अंगवाला, मँझोला कदवाला मंगल ग्रह है।

शोणस्य नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमार्द्धस्था:।
निर्विन्ध्या वेत्रवती सिप्रा गोदावरी वेणा॥

मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धुमालतीपारा:।
उत्तरपाण्ड्यमहेन्द्राद्रिविन्ध्यमलयोपगाश्चोला:॥

द्रविडविदेहान्ध्राश्मकभासापरकौङ्कणा: समन्त्रिषिका:।
कुन्तलकेरलदण्डककान्तिपुरम्लेच्छसङ्करिण:॥

नासिक्यभोगवर्द्धनविराटविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशा:।
ये च पिबन्ति सुतोयां तापीं ये चापि गोमतिसलिलम्॥

नागरकृषिकरपारतहुताशनाजीविशस्त्रवार्तानाम्।
आटविकदुर्गकर्वटवधिकनृशंसावलिप्तानाम्॥

नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भाभिघातपशुपानाम्।
रक्तफलकुसुमविद्रुमचमूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम्॥

कोशभवनाग्निहोत्रिकधात्वाकरशाक्यभिक्षुचौराणाम्।
शठदीर्घवैरबह्वाशिनां च वसुधासुतोऽधिपतिः॥

शोणनद, नर्मदा और भीमस्था नदी की पश्चिम दिशा के आधे भाग के राजाजन, निर्विन्ध्या, वेत्रवती, गोदावरी, शिप्रा, वेणा, मन्दाकिनी, पयोष्णी, महानदी, सिन्धु, मालती तथा पारानदी, उत्तरपाण्ड्य, महेन्द्र पर्वत, विन्ध्याचल तथा मलयगिरि के नजदीक स्थित देश, चोल, द्रविड, विदेह, आन्ध्र, अध्यम, भासापर, कौङ्कण, समन्त्रिषिक, कुन्तल, केरल, दण्डकारण्य, कान्तिपुर, म्लेच्छ, सङ्कर जाति, नासिक्य, भोगवर्द्धन, तर्कराट, विन्ध्याचल के नजदीक स्थित देश, तापी और गोमती नदी के सुन्दर, मधुर व स्वच्छ जल पीने वाले जनगण, नागरजन, कृषक, पारत, अग्निहोत्री, सोनार, शस्त्र से जीविका चलाने वाले, वनवासीजन, दुर्ग, कर्वट देश के निवासीजन, वधिक, पापी, कार्यों को नहीं करने वाला अकर्मण्यजन, राजाजन, हाथी, बालक, दम्भी, बालमृत्युकर, पशुपालक, लाल फल व पुष्प, प्रवाल, सेनापति, गुड़, मदिरा, तीक्ष्ण, कोषागार, अग्निहोत्र करने वाले, धातु खान, शाक्य, भिक्षु, चोर, शठ (परकार्य हन्ता), दृढ़द्वेष, अति भोजन करने वाले आदि का अधिपति मंगल को कहा गया है। इसके अतिरिक्त भद्रबाहु संहिता में दण्डक, अश्मक, क्षिप्रा, पयोष्णी इनका अधिपति मंगल को बताया गया है। इन्हीं प्रदेशों का अधिपति मंगल को मधुसूदन ओझा जी ने कादम्बिनी ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

6.3.2 बुध-गुरु-शुक्र ग्रहों के स्वरूप एवं भक्ति

बुध:

ज्योतिष शास्त्र में बुध ग्रह को काल पुरुष की वाणी कहा जाता है। ग्रहों के राजादि विभाग में बुध ग्रह को राजकुमार की उपाधि प्राप्त है। बुध ग्रह की आयु कुमारावस्था है तथा बुध ग्रह का उपग्रह अर्धयाम है। पुरुषादि विभाग में बुध ग्रह को क्लीव (नपुंसक) कहा जाता है तथा बुध ग्रह का वर्ण दुर्वा की तरह हरितवर्ण है। बुध ग्रह को भूमि (पृथ्वी) तत्व का स्वामी कहा जाता है। ब्राह्मणादि वर्ण में बुध ग्रह को वैश्य वर्ण की उपाधि प्राप्त है तथा बुध रजोगुण युक्त ग्रह है। कन्या तथा मिथुन राशि के स्वामी बुध ग्रह है और बुध ग्रह की उच्च राशि कन्या एवं नीच राशि मीन है। बुध ग्रह के स्वामी केशव (विष्णु) है तथा बुध का स्थान विहारभूमि (क्रीडावन, उपवन, मनोरंजन स्थान इत्यादि) है। दक्षिण दिशा के स्वामी बुध ग्रह को कहा जाता है तथा शरद ऋतु का भी अधिपति बहुत ही है। बुध ग्रह के स्वरूप के विषय में वृहत्पाराशर होरा शास्त्र में वर्णन मिलता है-

वपुः श्रेष्ठो क्लिष्टवाक्य ह्यतिहास्यरुचिर्बुधः।
पित्तवान् कफवान्विप्र मारुतप्रकृतिस्तथा॥

सुंदर शरीर, कम बोलने वाला, बहुत हँसोड स्वभाव, पित्त तथा कफ प्रकृति, और वायु स्वभाव वाला बुध ग्रह है।

लोहित्यः सिन्धुनदः सरयूर्गाम्भीरिका रथाख्या च।
गङ्गाकौशिक्याद्याः सरितो वैदेहकाम्बोजाः॥

मथुरायाः पूर्वार्द्धं हिमवद्गोमन्तचित्रकूटस्थाः।
सौराष्ट्रसेतुजलमार्गपण्यबिलपर्वताश्रयिणः॥

उदपानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणिरागगन्धयुक्तिविदः।
आलेख्यशब्दगणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञाः॥

चरपुरुषकुहकजीवकशिशुकविशठसूचकाभिचारताः।
दूतनपुंसकहास्यज्ञभूततन्त्रेन्द्रजालज्ञाः॥

आरक्षकनटनर्तकघृततैलस्नेहबीजतिक्तानि।
व्रतचारिरसायनकुशलवेसराश्चन्द्रपुत्रस्य॥

लोहित्य, सिन्धुनदी, सरयू, गाम्भीरिका, रथाख्या, गंगा, कौशिकी, विपाशा, सरस्वती, चन्द्रभागा आदि नदी और मिथिला, काम्बोज, मथुरा आदि के पूर्वार्द्ध भाग, हिमालय पर्वत, गोमन्त पर्वत और चित्रकूट पर्वत के प्रान्तभाग के निवासी जन, सौराष्ट्र देश के जनगण, सेतु के आश्रय और जलमार्ग के आश्रय में रहने वाले जन, व्यापार करने वाले, बिल में रहने वाले, पर्वत पर वास करने वाले, वापी, कुआँ, तालाब आदि, यन्त्रज्ञ, संगीतज्ञ, लेखक, मणि को पहचान करने वाले, वस्त्रादि रंगने वाले, सुगन्धिद्रव्य का निर्माता, चित्रकार, वैयाकरण, ज्यौतिष, आयुष्य या आयु, शक्ति वर्द्धक रसायन को बनाने या जानने वालों, शिल्पकार, गुप्तचर, कुहक, बालक, कवि, शठ, चुगली करने वाले, वशीकरणोच्चाटन-विद्वेष, मारण चतुष्टय को जानने वाले, दूत, नपुंसक, हास्यकर्त्ता, भूततन्त्र को जानने वाले, इन्द्रजाल के ज्ञाता, रक्षक, नर्तक, घृत, तेल, स्नेह, बीज, तीक्त, व्रती, रसायनज्ञ, वेसर आदि का अधिपति बुध को आचार्यो ने कहा है। इसके अतिरिक्त भद्रबाहु संहिता में मंदीरका और रथा का अधिपति बुध को बताया गया है।

गुरुः

ज्योतिष शास्त्र में गुरु को काल पुरुष का ज्ञानसुख कहा जाता है। गुरु को ग्रहों के मंत्री की उपाधि प्राप्त है। गुरु का उपग्रह यमकण्टक है तथा गुरु का वर्ण गौर (पीत) है। गुरु नभ (आकाश) तत्व के स्वामी हैं और सत्त्वगुण सम्पन्न ग्रह गुरु है। गुरु का स्वामी इन्द्र है तथा गुरु का स्थान कोशागार (भाण्डागार इत्यादि) है। ईशानकोण के अधिपति गुरु है और हेमन्त ऋतु के भी स्वामी गुरु है। धनु तथा मीन राशि के स्वामी गुरु हैं और गुरु का उच्चराशि कर्क और नीचराशि मकर है। गुरु को पुरुषादि विभाग में पुरुष की संज्ञा प्राप्त है और ब्राह्मणादि वर्ण विभाग में ब्राह्मण वर्ण का ग्रह गुरु है। गुरु के स्वरूप का वर्णन वृहत्पाराशर होरा शास्त्र में किया गया है यथा-

बृहद् गात्रो गुरुश्चैव पिंगलो मूर्द्धजेक्षणः।
कफप्रकृतिको धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः॥

बृहद् शरीर, पिंगल दृष्टि और उठे केश वाला, कफ प्रकृति, सर्व विद्या विशारद और बुद्धिमान् गुरु ग्रह होता है।

सिन्धुनदपूर्वभागो मथुरापश्चार्द्धभरतसौवीराः।
स्त्रुघ्नौदीच्यविपाशासरिच्छतद्रू रमठशाल्वाः॥

त्रैगर्तपौरवाम्बष्ठपारता वाटधानयौधेयाः।
सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि॥

हस्त्यश्वपुरोहितभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टीकासक्ताः।
कारूण्यसत्यशौचव्रतविद्यादानधर्मयुताः॥

पौरमहाधनशब्दार्थवेदविदुषोऽभिचारनीतिज्ञाः।
मनुजेश्वरोपकरणं छत्रध्वजचामराद्यं च॥

शैलेयकुष्ठमांसीतगररससैन्धवानि वल्लीजम्।
मधुररसमधूच्छिष्टानि चोरकश्चेति जीवस्य॥

सिन्धु नदी की पूर्व दिशा के देश, मथुरा की पश्चिम दिशा का आधाभाग, भरत, सौवीर, स्नुघ्न, उत्तर दिशा के निवासीजन, विपाशा नदी, शतद्रु नदी, रमठ, शाल्व, त्रैगर्त, पौरव, अम्बष्ठ, पारत, वाटधान, यौधेय, सारस्वत, अर्जुनायन तथा मत्स्यदेश (धौलपुर, भरतपुर, जयपुर आदि) का आधा भाग, हाथी, घोड़ा, पुरोहित, राजा, मन्त्री, माङ्गलिक कार्य में आसक्तजन, पौष्टिक कार्यरतजन, दयालु, सत्यवक्ता, शुद्ध व पवित्र जीवन यापन करने वाले, तपस्वी, विद्वान्, दाता, धार्मिक, ग्रामीण, वैयाकरण, अर्थोत्पत्ति करने वाले, वेदज्ञ, अभिचार क्रिया निपुण, नीतिज्ञ, राजकीय उपकरण आयुध, सन्नाह, छत्र, ध्वजा, चामर आदि, सुगन्ध द्रव्य, कुष्ठरोगी, मांसीतगर, रस, नमक, मूँग आदि, मधुररस, मधूच्छिष्ठ, चोरक, सुगन्धित द्रव्य आदि का अधिपति गुरु को कहा गया है।

शुक्रः

ज्योतिष शास्त्र में शुक्र ग्रह को काल पुरुष का वीर्य कहा गया है। ग्रहों के मंत्री शुक्र ग्रह को माना गया है। शुक्र ग्रह की आयु 16 वर्ष है तथा शुक्र ग्रह का उपग्रह कोदण्ड है। शुक्र ग्रह का वर्ण श्यामवर्ण (चित्रवर्ण) है तथा शुक्र ग्रह तोय (जल) तत्त्व का स्वामी है। ग्रहों के पुरुषादि विभाग में शुक्र स्त्री संज्ञक ग्रह है तथा ग्रहों के ब्राह्मणादि वर्ण विभाग में शुक्र ग्रह को ब्राह्मण वर्ण का कहा गया है। शुक्र रजो गुण सम्पन्न ग्रह है। शुक्र ग्रह के स्वामी शचिका (इन्द्रपत्नी) को माना जाता है तथा शुक्र ग्रह का स्थान शयनकक्ष है। वृष तथा तुला राशि के स्वामी शुक्र ग्रह को कहा जाता है तथा शुक्र की उच्च राशि मीन और नीच राशि कन्या है। आग्नेयकोण के स्वामी शुक्र ग्रह है तथा बसन्त ऋतु के भी अधिपति शुक्र ग्रह है। शुक्र ग्रह के स्वरूप का वर्णन करते हुए वृहत्पाराशर होरा शास्त्र में कहा गया है कि-

सुखी कान्तवपुः श्रेष्ठः सुलोचनो भृगोः सुतः।
काव्यकर्ता कफाधिक्यानिलात्मा वक्रमूर्धजः॥

सुखी, सुन्दर, श्रेष्ठ, सुलोचन, काव्यकर्ता अर्थात् कवि, कफ वात प्रकृति वाला तथा कुचित केश वाला शुक्र ग्रह है।

तक्षशिलमर्तिकावतबहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः।
प्रस्थलमालवकैकयदाशार्णोशीनराः शिबयः॥

ये च पिबन्ति वितस्तामिरावर्ती चन्द्रभागसरितं च।
रथरजताकरकुञ्जरतुरगमहामात्रधनयुक्ताः॥

सुरभिकुसुमानुलेपनमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्याः।
वरतरुणयुवतिकामोपकरणमृष्टान्नमधुरभुजः॥

उद्यानसलिलकामुकयशः सुखौदार्यरुपसम्पन्नाः।
विद्वदमात्यवणिग्जनघटकृच्चित्राण्डजास्त्रिफलाः॥

कौशेयपट्टकम्बलपत्रौर्णिकरोध्रपत्रचोचानि।
जातीफलागुरुवचापिप्पल्य श्चन्दनं च भृगोः॥

तक्षशिला नगर, मार्तिकावत देश, बहुगिरि, गान्धार, पुष्कलावतक, प्रस्थल, मालव, कैकय, दशार्ण, उशीनगर, शिवि, वितस्ता, ऐरावती और चन्द्रभागा नदी के जल का पान करने वाले जनगण, रथ, रजत, आकर, हाथी, घोड़ा, महामन्त्री, धनवान्, सुगन्ध, द्रव्य, पुष्प, चन्दन, मणि, वज्र, भूषण, अम्वुरुह, शय्या, प्रधान, युवा, स्त्री, काम के उपकरण जैसे पुष्प, धूप, माला, चन्दन आदि, मृष्ट अन्न का आहार करने वाले जन, मीठा आहार लेने वाले जन, उद्यान, जल, कामी, यशस्वी, सुखवान्, दानी, सुन्दर, विद्वान्, जनों, मन्त्री, व्यापार से जीवन यापन करने वाले, कुम्भकार, चित्राण्डज, फलत्रय जैसे एला, लवङ्ग कंकोल आदि, कौशेयपट, कम्बल, पत्रौर्णिक, रोध्र, पत्र, चोच (नारियल), जायफल, अगरु, वचा, पिप्पली, चन्दन आदि का अधिपति शुक्र को कहा गया है।

6.3.3 शनि-राहु-केतु ग्रहों के स्वरूप एवं भक्ति

शनिः

ज्योतिष शास्त्र में शनि ग्रह को काल पुरुष का दुख कहा जाता है। ग्रहों के राजादि विभाग में शनि ग्रह को प्रेष्यक (दास) माना जाता है। ग्रहों के उपग्रह में शनि ग्रह का उपग्रह गुलिक है और ग्रहों के आयु विशेष में शनि ग्रह की आयु 100 वर्ष बतायी गयी है। ग्रहों के रक्तादि वर्ण में शनि ग्रह का वर्ण कृष्णवर्ण बताया गया है। ग्रहों के पुरुषादि विभाग में शनि ग्रह को क्लीव (नपुंसक) कहा जाता है और शनि ग्रह को वायु तत्त्व का स्वामी कहा जाता है। ग्रहों के ब्राह्मणादि विभाग में शनि ग्रह को शुद्र वर्ण का कहा जाता है तथा शनि तमोगुण युक्त ग्रह है। शनि ग्रह का स्थान परिष्कृत स्थान बताया गया है। पश्चिम दिशा के स्वामी शनि को कहा जाता है और शिशिर ऋतु के भी अधिपति शनि ग्रह ही हैं। मकर और कुम्भ राशि के स्वामी शनि है तथा शनि की उच्च राशि तुला और नीच राशि मेष है। शनि ग्रह के स्वरूप का वर्णन वृहत्पाराशर होरा शास्त्र में किया गया है यथा-

कृशदीर्घतनुः सौरिः पिंगलदृष्ट्यनिलात्मकः।
स्थूलदन्तोSलसो पंगुः खररोमककचो द्विज॥

कृश और लंबा कद, पिंगल दृष्टि, वायु प्रकृति, स्थूल दांत वाला, शोभित पुरुषाकृति तथा कड़े केश और रोम वाला शनि ग्रह है।

आनर्तार्बुदपुष्करसौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतकाः।
नष्टा यस्मिन् देशे सरस्वती पश्चिमो देशः॥

कुरुभूमिजाः प्रभासं विदिशा वेदस्मृति महीतटजाः।
खलमलिननीचतैलिकविहीनसत्त्वोपहतपुंस्त्वाः॥

बान्धनशाकुनिकाशुचिकैवर्तविरुपवृद्धसौकरिकाः।
गणपूज्यस्खलितव्रतशबरपुलिन्दार्थपरगहीनाः॥

कटुतिक्तरसायनविधवयोषितो भुजगतस्करमहिष्यः।
खरकरभचणकवातलनिष्पावाश्चार्कपुत्रस्य॥

आनर्त्त, अर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्र, आभीर, शूद्र, रैवतक, सरस्वती नदी जहाँ नष्ट हुई उससे पश्चिम देश, कुरूक्षेत्र में उत्पन्न जन, प्रभासक्षेत्र, विदिशा नगर, वेदस्मृती नदी, महानदी के तट पर उत्पन्न जन, खल, मलिन, नीच, तेली, निर्बल, नपुंसक, बन्धनस्थल, पक्षियों का शिकार करने वाले, अपवित्रजन, धीवर, कुरूप, वृद्ध, सूअर पालक, गण प्रधान, अनाचरण युक्त जन, शबर, पुलिन्द, दरिद्र, कटु द्रव्य, तिक्त, रसायन, विधवास्त्री, सर्प, चोर, महिषी, गधा, ऊँट, चना, वातल, शाल्य (धान्य विशेष) आदि का स्वामी शनि को कहा गया है।

राहु- केतुः

ज्योतिषशास्त्र में राहु और केतु दोनों ग्रहों को छाया ग्रह माना जाता है। ग्रहों के राजादि विभाग में राहु और केतु को सेना कहा जाता है। तन्वादि भाव में राहु जहां स्थित होते हैं उनसे सातवें स्थान पर केतु स्थित होते हैं। राहु और केतु यह दोनों ग्रह सदैव ही वक्री गति से चलते हैं। ग्रहों के उपग्रह में राहु ग्रह का उपग्रह पात है तथा केतु ग्रह का उपग्रह उपकेतु है। ग्रहों के आयु विशेष में राहु तथा केतु का आयु 100 वर्ष बताया जाता है। नैऋतकोण का स्वामी राहु को बताया गया है। राहु और केतु के स्वरूप का वर्णन करते हुए वृहत्पाराशर होरा शास्त्र में कहा गया है कि-

धूम्राकारो नीलतनुर्वनस्थोऽपि भयङ्करः।
वातप्रकृतिको धीमान् स्वर्भानुः प्रतिमः शिखि॥

धूम्र, नीलवर्ण, वनचारी, भयङ्कर रूप वाले तथा वात प्रकृति वाले राहु और केतु ग्रह है।

गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा म्लेच्छजातयः शूद्राः।
गोमायुभक्षशूलिकवोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गा॥

कुलपांसनहिंस्रकृतघ्नचौरनिःसत्यशौचदानाश्च।
खरचरनियुद्धवित्तीव्ररोषगर्त्ताश्रया नीचाः॥

उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे।
धर्मेण च सन्त्यक्ता माषतिलाश्चर्कशशिशत्रोः॥

पर्वत शिखर, कन्दरा, दरी (गुहा) आदि में निवास करने वाले, म्लेच्छजाति, शूद्र, शृङ्गाल, मांस भक्षण करने वाले, शूलिक, वोक्काण, अश्वमुख, विकलाङ्ग जन, कुलकलङ्क जन, क्रूर, कृतघ्न, चोर, मिथ्याचरण वाला, पवित्रता रहितजन, कृपण, गधा, गुप्तचर, बाहु युद्ध करने में निपुण, अतिक्रोधी, गर्तवासी, नीच, उपहतजन, दाम्भिक, राक्षस, देर तक सोने वाला सभी जन्तु, धर्म रहित जन, उड़द, तिल आदि का अधिपति राहु को कहा गया है।

गिरिदुर्गपह्लश्वेतहूणचोलावगाणमरुचीनाः।
प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः॥

परदारविवादरताः पररन्ध्रकुतूहला मदोत्सिक्ताः।
मूर्खधार्मिकविजिगीषश्च केतोः समाख्याताः॥

पर्वत, दुर्ग, पह्लवजन, श्वेत, हूण, चोल, आवगाण, मरूभूमि, चीन, गह्वरों में वास करने वाले, धनी, महेच्छ, व्यवसाय निपुण, पराक्रमी, परस्त्रीगमन कर्त्ता, विवादी, छिद्रान्वेषण करने वाला, मत्त, मूर्ख, अधार्मिक, जीतने की ईच्छा वाला आदि का अधिपति केतु को जानना चाहिए। इसके अतिरिक्त भद्रबाहु संहिता में मारवाड़, दुर्गाचलादिक, पल्लव और चौलक इनका अधिपति केतु को बताया गया है।

इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए सूर्यादि शुभाशुभ ग्रह (शुभ एवं पाप ग्रह), सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि तथा सूर्यादि ग्रहों के शत्रु, मित्र एवं सम पर प्रकाश डालते है-

उदयसमये यः स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो
यदि च न हतो निर्घातोल्कारजोग्रहमर्दनैः।

स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः
स भवति शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः॥

उदय समय में निर्मल, विपुल, स्वभावस्थित, निर्घात, उल्का, धूलि तथा ग्रहयुद्ध से अहत, अपनी राशि में स्थित, उच्चगत या शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) से दृष्ट ग्रह जिनका स्वामी हो, उनके लिये शुभ करने वाला होता है।

अभिहितविपरीतलक्षणे क्षयमुपगच्छति तत्परिग्रहः।
डमरभयगदातुरा जना नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः॥

यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां स्वसुतकृतं नियमादमात्यजं वा।
भवति जनपदस्य चाप्यवृष्ट्या गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु॥

जो ग्रह पूर्वोक्त शुभ लक्षणों से विपरीत लक्षण वाला हो, वह अपने परिग्रह वर्ग का शस्त्रयुद्ध और रोग से नाश करता है तथा राजाओं को दुःखी करता है। इस तरह के उत्पात होने पर यदि राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या निश्चित करके मन्त्री का भय न हो तो उनका तथा लोगों को अवृष्टि होने के कारण अपूर्व पुर, पर्वत और नदियों में गमन होता है। अर्थात् इस तरह के उत्पात होने पर राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या मन्त्री का भय अवश्य होता है। यदि किसी तरह इन आपत्तियों से मुक्ति हो जाय तो भी प्राप्त अवृष्टि के कारण अन्न, शाक, जल के लिये जहाँ पर कभी नहीं गया था, उन पुर, पर्वत और नदियों में जाना पड़ता है।

6.4 शुभाशुभ ग्रहों का निरूपण

प्रकाशकौ शीतकर प्रभाकरौ ताराग्रहाः पञ्च धरासुतादयः।
तमः स्वरुपौ शिखिसिंहिकासुतौ शुभाः राशिज्ञामरवन्धभार्गवाः॥

क्षीणेन्दुमन्दरविराहुशिखिक्षमाजाः पापास्तु पापयुतचन्द्रसुतश्च पापः।
तेषामतीव शुभदौ गुरुदानवेज्यौ क्रूरौ दिवाकरसुत क्षित्तिजौ भवेताम्।।

शुक्लादिरात्रिदशकेऽहनि मध्यवीर्यशाली द्वितीयदशकेऽतिशुभप्रदोऽसौ।
चन्द्रस्तृतीयदशके बलवर्जितस्तु सौम्येक्षणादिसहितो यदि शोभनः स्यात्।।

चन्द्रमा और सूर्य प्रकाश (उजाला) करने वाले ग्रह है। मंगलादि पञ्च (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) तारा ग्रह कहे जाते हैं। राहु और केतु तम (अन्धकार) प्रधान ग्रह है। पूर्ण चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र ये शुभ ग्रह कहे जाते हैं। क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, राहु और केतु के पाप ग्रह कहे जाते हैं। पाप ग्रह से युक्त बुध ग्रह भी पाप ग्रह के श्रेणी में आते है। शुभ ग्रहों में गुरु और शुक्र को विशेष शुभ ग्रह माना जाता है। पाप ग्रहों में मंगल और शनि को अतिक्रूर माना गया है।

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से दशमी तिथि तक चन्द्रमा मध्यबली होते है। फिर शुक्ल पक्ष की एकादशी से कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तिथि तक चन्द्रमा पूर्ण बली रहते है। फिर कृष्ण पक्ष की षष्ठी तिथि से अमावस्या तक चन्द्रमा बलहीन रहते है। परन्तु यदि चन्द्रमा शुभ ग्रहों से दृष्टियुत हो तो शुभ ग्रह के श्रेणी में आ जाते है।

6.5 सूर्यादि ग्रहों के दृष्टि तथा मित्रादि का निरूपण

दशम- तृतीये नव-पञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च।
पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति।।

सूर्यादि सभी ग्रह अपने-अपने स्थान से तृतीय एवं दशम स्थान पर एक चरण दृष्टि डालते हैं, पञ्चम एवं नवम स्थान पर दो चरण दृष्टि डालते हैं, चतुर्थ एवं अष्टम स्थान पर तीन चरण दृष्टि डालते हैं और सप्तम स्थान पर चार चरण अर्थात् पूर्ण दृष्टि डालते हैं। सूर्यादि जिस स्थान पर जैसा दृष्टि डालते हैं उसी क्रम से शुभाशुभ फल भी देते है।

पूर्णम्पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणेमपि जीवः।
चतुरस्त्रं भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रं च।।

सूर्यादि ग्रहों में कुछ ग्रहों की विशेष दृष्टि भी होती है जैसे शनि ग्रह अपने से तृतीय एवं दशम स्थान पर पूर्ण दृष्टि डालते हैं, गुरु ग्रह अपने से पञ्चम एवं नवम स्थान पर पूर्ण दृष्टि डालते हैं और मंगल अपने से चतुर्थ एवं अष्टम स्थान पर पूर्ण दृष्टि डालते हैं। तथा सूर्य, चन्द्रमा, बुध और शुक्र ये ग्रह अपने से सप्तम स्थान मात्र पर पूर्ण दृष्टि डालते हैं।

सूर्यादि ग्रहों के मित्र, शत्रु एवं सम-

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे।।
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा

सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी।
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरेस्तथान्येऽरय-
स्तत्काले च दशाऽऽयबन्धुसहजस्वाऽन्त्येषु मित्रं स्थितः॥

सूर्य के-शनि-शुक्र शत्रु, बुध सम और शेष (चन्द्रमा मंगल-बृहस्पति) ये मित्र हैं । चन्द्रमा के- सूर्य-बुध मित्र तथा शेष सब ग्रह सम हैं (चन्द्रमा का कोई भी ग्रह नैसर्गिक शत्रु नहीं हैं)। मंगल के-बृहस्पति-चन्द्रमा - सूर्य मित्र, बुध-शत्रु और शुक्र-शनि सम हैं । बुध के-सूर्य-शुक्र मित्र, बुध- शत्रु और शुक्र शनि सम हैं । बुध के-सूर्य-शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु और शेष ग्रह (मंगल- बृहस्पति - शनि) सम हैं । बृहस्पति के बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम और बाकी (सूर्य-चन्द्रमा मंगल) ग्रह मित्र हैं । शुक्र के बुध-शनि मित्र, मंगल- बृहस्पति सम और शेष (सूर्य-चन्द्रमा) शत्रु हैं । शनि के शुक्र बुध मित्र, बृहस्पति सम और अन्य (सूर्य-चन्द्रमा-मंगल) ये शत्रु हैं।

ग्रह	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्रमा, मंगल, गुरु	सूर्य, बुध	सूर्य, चन्द्रमा, गुरु	सूर्य, शुक्र	सूर्य,चन्द्रमा, मंगल	बुध, शनि	बुध, शुक्र
सम	बुध	मंगल, गुरु, शुक्र, शनि	शुक्र, शनि	मंगल, गुरु, शनि	शनि	मंगल, गुरु	गुरु
शत्रु	शुक्र, शनि	X	बुध	चन्द्रमा	बुध, शुक्र	सूर्य, चन्द्रमा	सूर्य,चन्द्रमा, मंगल

6.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र में ग्रहभक्ति का अर्थ है- सूर्यादि ग्रहों के भक्ति (हिस्से) का देश-व्यक्ति और वस्तु। सूर्यादि ग्रहों के भक्ति एवं उसके फल का वर्णन संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। यह निश्चित है कि सूर्यादि ग्रह अपने-अपने हिस्से के देश-व्यक्ति और वस्तु पर शुभाशुभ फल देते हैं। यदि कोई देश-व्यक्ति और वस्तु शुभ ग्रह से दृष्ट हो या देश-व्यक्ति और वस्तु के अधिपति ग्रह स्वराशि गत हो या अपने उच्च राशि में स्थिर हो या किसी भी स्थिति से शुभ कारक हो तो उस देश- व्यक्ति और वस्तु के लिए वह ग्रह शुभ दायक होगा। यदि शुभ लक्षणों के विपरीत लक्षण दिखे तो ग्रह अपने अधिपत्य देश-व्यक्ति और वस्तु का शस्त्र कलह, रोग, भय आदि से विनाश करता है तथा राजा और प्रजा के लिए भी दुःख(कष्ट) दायक होता है। अशुभ प्रकार के स्थिति में भी यदि राजा या प्रजा को शत्रु, पुत्र या मंत्री के द्वारा भी भय उत्पन्न नही हो तो सभी को अनावृष्टि से अपूर्व पर्वत और नदियों में गमन करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य है कि उपरोक्त प्रकार का उत्पात होने पर राजा हो या प्रजा सभी को शत्रु, पुत्र या मंत्री से भय निश्चय ही प्राप्त होता है। यदि किसी उपाय से उक्त विपत्तियां टल जाए तो अनावृष्टि से धान्य, साग, जल आदि आहार वस्तुओं के लिए देश छोड़ कहीं दूर पर्वत या नदियों का आश्रय करना पड़ता है।

6.7 शब्दावली

अधिपति – स्वामी

प्रेष्यक – नौकर/दास

क्लीव – नपुंसक

वक्री – उल्टा

मार्गी – सीधा

रक्तवर्ण – लाल रंग

अनावृष्टि – अल्प वर्षा

नभ – आकाश

अम्बु – जल

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

१. कादम्बिनी

२. भद्रबाहुसंहिता

३. बृहत्संहिता

४. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र

6.9 बोधप्रश्न

१. ग्रहभक्ति से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

२. सूर्य और मंगल ग्रह के अधिपत्य देश-व्यक्ति और वस्तु का वर्णन कीजिये।

३. ग्रहों के दृष्टि, शुभाशुभ ग्रह और ग्रहों के मित्र, शत्रु और सम का वर्णन कीजिये।

४. बुध और शुक्र ग्रह के स्वरूप तथा अधिपत्य देश, व्यक्ति और वस्तु का वर्णन कीजिये।

५. समस्त ग्रहों के अधिपत्य देश, व्यक्ति और वस्तु का वर्णन कीजिये।